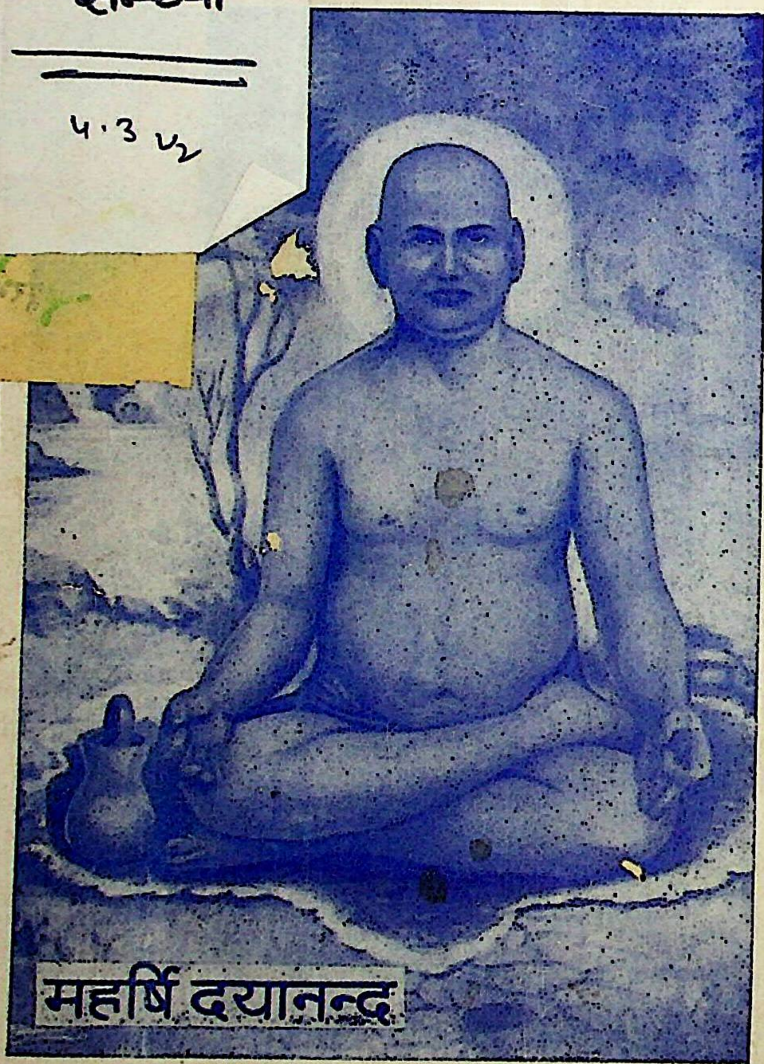
ब्रह्मयज्ञ वैदिक सन्ध्या

५·३ ४२

वैदिक सन्ध्या



ओ३म्

'असतो मा सद्गमय–तमसो मा ज्योतिर्गमय–मृत्योर्मामृतं गमय'

"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्"

'श्रद्धा साहित्य प्रकाशन का छब्बीसवाँ पुष्प'

ब्रह्मयज्ञ—वैदिक सन्ध्या

लेखक— रामप्रसाद वेदालंकार
आचार्य एवं उपकुलपति (Pro-Vice-Chancellor)
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
[आचार्य गोवर्धन शास्त्री स्मृति पुरस्कार (१९८१) से
सम्मानित एवं पुरस्कृत, द्वारा संघड़ विद्या सभा ट्रस्ट, जयपुर]

पता—
आचार्य रामप्रसाद वेदालंकार
कर्म कुटीर, आर्यनगर, ज्वालापुर
जि० सहारनपुर, (उ. प्र.) पिन–249407



प्रकाशक—
श्री नारायण दास वानप्रस्थ, वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर

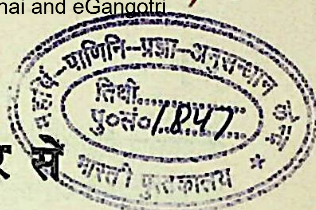
प्रथम संस्करण) दयानन्दाब्द–१५७ (सम्वत् २०३८
४००० प्रतियाँ) (दिस० १९८१

आप का दान—श्रद्धा साहित्य प्रकाशन का ज्ञान
मूल्य—पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना

विषय सूची

मूल्य –"श्रद्धा साहित्य प्रकाशन" से सरल सुबोध रूप में प्रकाशित होने वाला वैदिक साहित्य दानी महानुभावों के दान से प्रकाशित होता है और सुपात्रों को प्रदान करने का प्रयास किया जाता है। पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना ही इस का मूल्य है।

जो महानुभाव इस सरल सुबोध वैदिक साहित्य को उपयोगी समझ कर संगवाना चाहें वा इसमें अपना आर्थिक सहयोग प्रदान करना चाहें, वे कृपया लेखक के पते पर पत्र व्यवहार करें। न्यून से न्यून १० रु० तक की राशि किसी एक पुस्तक की दान सूची में प्रकाशित की जायेगी, शेष फुटकर रूप में।

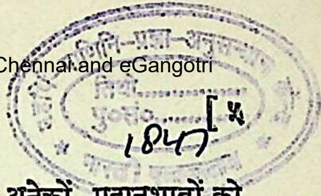


प्रकाशक की ओर से

मेरा जन्म आसाढ़ ६ सम्वत् १६६१ तदनुसार १७ जुलाई १६०४ को सिरसा जिला इलाहबाद में पूज्य श्री प्रयाग दास केसरवानी वैश्य के सुसम्पन्न परिवार में हुआ। विचारों से यह परिवार पूर्णतया पौराणिक था। सभी परिवार के सदस्य भगवान् शङ्कर के अनन्य उपासक थे। परिवार के प्रभाव के कारण मैं भी अपनी पांच वर्ष की आयु से ही निरन्तर प्रतिदिन मन्दिर में जा-जा कर भगवान् शंकर की बड़ी श्रद्धा-भक्ति से पूजा किया करता था। लगभग १०-१२ वर्ष की आयु से हमारे यहां आर्य समाज तथा सनातनधर्म की ओर से जलसे होते रहे हैं। उसी समय मेरे विचार पलटे और मेरा आर्य समाज की ओर झुकाव हो गया। सन् १६१८ ई० में पंजाब के सुप्रसिद्ध नगर अमृतसर में जब जलियां वाले बाग का हत्याकाण्ड हुआ तो कांग्रेस से महात्मा गांधी की अपील पर मैं ने दर्जे ६ में ही पढ़ना छोड़ दिया और तब से ही मैं सामाजिक तथा राजनीतिक बहाव में बहने लगा। इस कारण तब से मेरी पढ़ाई समाप्त हो गयी। फिर मैं पुनः चाहते हुये भी परिस्थितिवश पढ़ नहीं सका। इस प्रकार मैं १६१८ से १६४२ तक स्वतन्त्रता संग्राम में ही प्रायः लगा रहा। साथ साथ मैं आर्य समाज की गतिविधियों में भी निरन्तर भाग लेता रहा तथा इस के सिद्धान्तों को भी निरन्तर पढ़ता, सुनता और सोचता-विचारता रहा। फिर मैं ने व्यापार करना भी आरम्भ कर दिया। इस मध्य में मुझे जीवन में बड़े-बड़े उत्कर्ष और अपकर्ष, उत्थान-पतन

के अवसर देखने पड़े—…। आज से लगभग ११-१२ वर्ष पूर्व मेरी धर्मपत्नी श्रीमती द्रोपदी देवी जी का देहावसान हो गया। मेरा कपड़े का थोक-परचून का व्यापार चलता था। पत्नी के देहावसान के उपरान्त व्यापार से मेरा-चित्त कुछ उचाट सा रहने लगा। मैं उन दिनों प्रभु से हृदय से यह प्रार्थना किया करता था, "प्रभुवर ! किसी प्रकार मुझे इस झंझट से छुट्टी दे।" प्रयाग के मेले पर हमारी दुकान गयी और मेले की समाप्ति पर जिस दिन दुकान वापिस आई, अगली प्रातः चार बजे कपड़े की मार्केट में आग लग गयी, जिस से मेरी सारी दुकान जलकर राख हो गयी। साथ ही मेरा कनिष्ठ पुत्र भी आग की लपेट में आकर पर्याप्त जल गया, पर ईश्वर की कृपा से वह छः ही मास के उपचार के उपरान्त ठीक हो गया। इस के अनन्तर फिर मैं ने दुकान करनी छोड़ दी और आर्यवानप्रस्थ आश्रम में आकर शान्ति की खोज में रत रहने लगा। यहाँ आकर मुझे बड़ी शान्ति मिली। यहाँ पर निवास करते हुए मैं जब ऋषिवर दयानन्द के सत्यार्थ प्रकाश और ऋग्वेद आदि ग्रन्थों का स्वाध्याय करता हूँ और तदनुसार सन्ध्या यज्ञ आदि सब सुकृत्यों को करने का हार्दिक प्रयास करता हूँ तथा प्रतिदिन वेदानुकूल प्रवचनों को सुनता हूँ तो मुझे हार्दिक प्रसन्नता होती है।

यह सब कुछ करते हुये मेरे मन में एक दिन आया कि जैसे मैं यहाँ सन्ध्या आदि करके सुख अनुभव करता हूँ। यदि इस संन्ध्या पर एक सरल सुबोध रूप में अर्थ और कुछ व्याख्या मिल



जाये तो जहाँ मुझे लाभ होगा वहाँ अन्य अनेकों महानुभावों को भी लाभ हो सकता है। यद्यपि सन्ध्या पर पर्याप्त अर्थ और भाष्य मिलते भी हैं, तो भी यह विचार मन में आते ही, जब जरा अवसर मिला, मैं श्री आचार्य रामप्रसाद [उपकुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्व-विद्यालय] से मिला और सन्ध्या पर सरल-सुबोध रूप में अर्थ और व्याख्या लिखने के लिये उन से निवेदन किया और साथ ही साथ अपनी सामर्थ्य के अनुसार एक सहस्र पुस्तकों पर जो भी व्यय होगा, उस के प्रदान करने की भी अपनी हार्दिक भावना अभिव्यक्त की। पर्याप्त व्यस्त रहते हुये भी उन्होंने मेरे इस हार्दिक अनुरोध को स्वीकार किया। इस प्रकार यह "ब्रह्मयज्ञ"-रूप में "वैदिक सन्ध्या" की यह लघु पुस्तक प्रकाशित हो सकी। मुझे विश्वास है कि धर्म प्रेमी ईश्वर परायण महानुभाव इस का स्वाध्याय कर इस से प्रेरणा प्राप्त कर सत्य मार्ग का अनुसरण करेंगे। यदि ऐसा हो सका तो मुझे हार्दिक प्रसन्नता होगी।

विनीत—

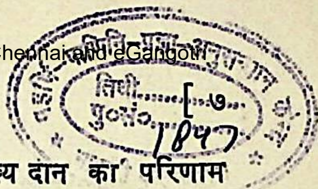
नारायण दास वानप्रस्थ

आर्य वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर

भूमिका

यद्यपि महर्षि दयानन्द प्रणीत ब्रह्म यज्ञ-वैदिक सन्ध्या पर अनेकों पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। और जिन्हों ने भी वे पुस्तकें लिखी हैं वे सभी उन विद्वानों-लेखक महानुभावों के चिरकाल तक के स्वाध्याय मनन चिन्तन और निदिध्यासन आदि का परिणाम हैं। हमें चाहिये कि उनका स्वाध्याय करके लाभ उठाएं। यह सब होने पर भी प्रायः अनेकों महानुभावों का यह आग्रह रहा कि मैं भी सन्ध्या-हवन आदि पर एक लघु पुस्तक लिखूं, विशेष कर अपने गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय के मान्य कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा एवं अन्य अनेकों सुप्रतिष्ठित महानुभावों आदि का आदेश तथा आग्रह रहा, पर फिर भी मैं अत्यन्त व्यस्त रहने आदि के कारणों से यह कार्य नहीं कर पाया। ऐसे ही अगस्त १९८१ में एक दिन श्री नारायण दास वानप्रस्थ महानुभाव भी बड़ी नम्रता से घर पर पधारे और बड़ी श्रद्धा और आग्रह से उन्होंने यह कहा कि "आप सन्ध्या पर सरल सुबोध अर्थ और व्याख्यायुक्त एक पुस्तक लिख कर प्रकाशित कर देवें तो मुझे हार्दिक प्रसन्नता होगी। पुस्तक यदि अक्टूबर पूर्वार्ध तक प्रकाशित हो जाए तो ठीक रहेगा।"

अपने मान्य कुलपति एवं श्री नारायण दास सरीखे महानुभावों की हार्दिक भावनाओं का परिणाम समझिये, तथा श्री



नारायण दास जी वानप्रस्थ के प्रथम मुख्य दान का परिणाम समझिये जो आज यह पुस्तक आप के कर कमलों में विराजमान है। इस पुस्तक की एक सहस्र प्रतियों का व्यय श्री मान्य नारायण दास जी ने अपनी पेन्शन में से पैसे बचा-बचा कर प्रदान किये हैं। स्वाध्याय प्रेमी एवं प्रभुपरायण महानुभावों को यदि इस से जीवन में कुछ ऊपर उठने और आगे बढ़ने में सहायता मिली तो लेखक और प्रकाशक अपनी लेखनी और अर्थ को सार्थक समझेंगे।

बहुत शीघ्र ही सन्ध्या एवं यज्ञ सम्बन्धी एक सरल-सुबोध अर्थयुक्त पुस्तक और प्रकाशित की जायेगी जैसी कि मान्य कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा जी चाहते हैं। यदि स्वाध्याय प्रेमी महानुभावों को इस से लाभ होता रहेगा तो लेखक यथाशक्ति यह सेवा करने का प्रयास करता रहेगा।

विनीत—रामप्रसाद वेदालङ्कार

समर्पण

जिस पावन परमेश्वर के अपार अनुग्रह से एवं अपने पूजनीय गुरुजनों के उदार हृदय से प्रदान किये हुए ज्ञानप्रसाद एवं आशीर्वाद से "श्रद्धा साहित्य प्रकाशन" द्वारा प्रकाशित यह छब्बीसवाँ पुष्प "वैदिक संध्या" पुस्तक आप के हाथों तक पहुँचा सका, उन्हीं के पावन चरणों में यह मेरा अल्प प्रयास समर्पित है।

विनीत- रामप्रसाद वेदालङ्कार

ब्रह्मयज्ञ–वैदिक सन्ध्या पद्धति

[1]ब्रह्मयज्ञ के अन्तर्गत सन्ध्योपासना का विधान किया जाता है।

[2]**सन्ध्या का अर्थः**—भली भान्ति ध्यान करते हैं वा ध्यान किया जाय परब्रह्म परमेश्वर का जिस में, वह सन्ध्या है।

सन्ध्या का समयः—रात और दिन के संयोग समय दोनों सन्ध्याओं में सब मनुष्यों को परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये। यह समय मनु महाराज के अनुसार प्रातः

---

१ +ब्रह्मयज्ञ के दो भाग हैं—सन्ध्योपासना और स्वाध्याय अर्थात् वेदादि सत्य शास्त्रों का अध्ययन। इन में सन्ध्योपासना पहिले करनी चाहिये और स्वाध्याय अग्नि होत्र के बाद।
(पंच महायज्ञ विधि)

२ पंच महायज्ञ विधि

+ब्रह्मयज्ञ के सम्बन्ध में महर्षि के विचार—(i)"तत्रादौ ब्रह्मयज्ञान्तर्गत सन्ध्या विधानं प्रोच्यते" (पंच महायज्ञ विधि)॥
(ii) "तत्र ब्रह्मयज्ञस्यायं प्रकारः साङ्गागां वेदादिशास्त्राणां सम्यगाध्ययनमध्यापनं सन्ध्योपासनं च" (ऋ० भा० भू०)
(iii) ब्रह्मयज्ञ जो पढ़ना-पढ़ाना, सन्ध्योपासन जो ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना–उपासना करना। (स० प्र० समु० ३)

उषा वेला से लेकर सूर्योदय तक और सायंकाल सूर्यास्त से नक्षत्र दर्शन—तारों के दर्शन तक ग्रहण करना चाहिये। इस से अधिक समय तक भी सन्ध्योपासना की जाए तो लाभ ही लाभ है, हानि कुछ भी नहीं।

[1]**सन्ध्या का स्थान:**—सन्ध्या के लिये एकान्त शान्त, निर्मल-स्वच्छ, साफ-सुथरा समतल कंकर-पत्थर आदि से रहित शुद्ध वायु वाला ऐसा स्थान होना चाहिये जहां बैठकर सन्ध्या करने मे मन को प्रसन्नता होवे। ऐसा स्थान नदी सरोवर झरने आदि का तट वा वन पर्वत गुफा आदि हो सकते हैं। परन्तु यदि ऐसा सम्भव न हो सके तो घर-परिवार में जितना भी शान्त एकान्त स्वच्छ निर्मल सन्ध्या के लिये अधिक से अधिक अनूकूल स्थान सम्भव हो सके उस का लाभ उठावे।

[2]**सन्ध्या में दिशा का नियम**—तैत्तिरीय आरण्यक के अनुसार ब्रह्म वादी लोग सन्ध्या में पूर्वाभिमुख होकर बैठते हैं। परन्तु ऋषि दयानन्द का कहना यह है कि—(ii)"जिस ओर की

---

१ पंच महायज्ञ विधि

२ "तदु ह वा एते ब्रह्मवादिनः पूर्वाभिमुखाः सन्ध्यायाम्"
(तै० आ० (२.२)

(ii) सं० वि० गृ० प्र०।

वायु हो, उधर को मुख करके सन्ध्या करे।"

सन्ध्या का प्रकार[1]—जैसे समाधिस्थ होकर योगी लोग परमात्मा का ध्यान करते हैं वैसे ही सन्ध्योपासना किया करें।

सन्ध्या की तैय्यारी—सन्ध्या का आरम्भ करते समय तैय्यारी के रूप में पहले बाह्य जलादि से शरीर की शुद्धि कर फिर आसन पर विराजमान होकर राग द्वेष असत्य आदि के त्याग से भीतर की शुद्धि करनी चाहिये। क्योंकि मनु महाराज के मनु स्मृति अध्याय ५ श्लोक १०६–[अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति। विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।] में स्पष्ट लिखा हुआ है कि "शरीर जलसे, मन सत्यसे, जीवात्मा विद्या और तप से तथा बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है।" परन्तु ऋषिवर दयानन्द का कहना यह है कि—"शरीर की शुद्धि की अपेक्षा अन्तःकरण की शुद्धि सब को अवश्य करनी चाहिये, क्योंकि वही सर्वोत्तम और परमेश्वर प्राप्ति का एक [प्रधान] साधन है।"

तब कुशा वा हाथ से मार्जन करे। अर्थात् परमेश्वर का ध्यान आदि करते समय किसी भी प्रकार का आलस्य न आवे, इसलिये शिर और नेत्र आदि पर जल का प्रक्षेप करे। यदि आलस्य न हो तो न करे।

---

१ सत्यार्थ प्रकाश

फिर न्यून से न्यून तीन [1]प्राणायाम करे। और मन[2] में 'ओ३म्' इस का जप करता जाये, ताकि ऐसा करने पर मन की चञ्चलता दूर हो कर एकाग्रता आये तथा परमेश्वर के मनन चिन्तन निदिध्यासन आदि में सहज प्रवृत्ति हो।

शिखाबन्धन—इस के अनन्तर निम्नलिखित गायत्री मन्त्र से शिखा को बान्धे, इसलिये कि इधर उधर केश बिखरे न रहें। यदि केश आदि न बिखरे रहें तो न करे। इस प्रकार जहां बाह्य रूप से शिखा को बान्धे वहाँ भीतरी रूप से बिखरी हुई वृत्तियों को बान्ध कर अपने को एकाग्र करने का हार्दिक सङ्कल्प करे।

गायन्त्री-मन्त्र

[3]ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ यजु० ३६.३॥ऋ० ३.६२.१०॥

---

१ शुद्ध देश, पवित्र आसन, जिधर की ओर का वायु हो उधर को मुख करके नाभि के नीचे से मूलेन्द्रिय को ऊपर संकोच करके हृदय के वायु को बल से बाहर निकाल के यथाशक्ति रोके, पश्चात् धीरे-धीरे भीतर लेकर भीतर थोड़ा सा रोके। यह एक प्राणायाम हुआ। इसी प्रकार कम से कम तीन प्राणायाम करे। (संस्कार विधि)

२ सत्यार्थ प्रकाश

३ मन्त्र के प्रारम्भ में प्रयुक्त "ओ३म्" को सर्वत्र "ओ३म्" ऐसा प्लुत रूप में ही बोलना चाहिये।

आचमन-मन्त्र

ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभि स्रवन्तु नः ॥ यजु० ३६-१२ ॥

इस प्रकार इस मन्त्र से परमेश्वर की प्रार्थना कर के तीन [1]आचमन करे, यदि जल न हो न करे। आचमन आलस्य और कण्ठस्थ कफ के निवारण के लिए है।

इन्द्रियस्पर्श-मन्त्र

बाईं हथेली में जल लेकर अपने दाहिने हाथ की मध्यमा और अनामिका अंगुलियों से जल स्पर्श करते हुए प्रथम दक्षिण पश्चात् वाम पार्श्व निम्नलिखित मन्त्रों से स्पर्श करे—

ओं वाक् वाक्।	इस मन्त्र से मुख का दायां और बायां भाग।
ओं प्राणः प्राणः।	इस से नासिका का दायाँ और बायां छिद्र।
ओं चक्षुः चक्षुः।	इस से दायां और बायां नेत्र।

---

१ 'आचमन' उतने जल को हथेली में ले कर उस के मूल और मध्य देश में ओष्ठ लगा कर करे कि वह जल कण्ठ के नीचे हृदय तक पहुँचे, न उस से अधिक न न्यून। (सत्यार्थ प्र०)

ओं श्रोत्रं श्रोत्रम् ।	इस से दायां और बायां कान।
ओं नाभिः ।	इस से नाभि।
ओं हृदयम् ।	इस से हृदय।
ओं कण्ठः ।	इस से कण्ठ।
ओं शिरः ।	इस से शिर अर्थात् मस्तिष्क।
ओं बाहुभ्यां यशोबलम् ।	इस से दोनों भुजाओं के मूल स्कन्ध।
ओं करतलकरपृष्ठे ।	इस से दोनों हाथों के ऊपर तले स्पर्श करे।

[1]इस प्रकार से ईश्वर की प्रार्थना पूर्वक इन्द्रियों का स्पर्श करे। इस का अभिप्राय है कि ईश्वर की प्रार्थना से सब इन्द्रियां बलवान् रहें।

मार्जन–मन्त्र

बायें हाथ की हथेली में जल लेकर दायें हाथ की मध्यमा, अनामिका और अंगुष्ठ से यद्वा कुशा से शिर, नेत्र आदि अंगों पर जल छिड़के।

ओं भूः पुनातु शिरसि ।	इस मन्त्र से शिर पर।

---

१ पंचमहायज्ञ विधि।

ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः । इस मन्त्र से दोनों नेत्रों पर ।

ओं स्वः पुनातु कण्ठे । इस मन्त्र से कण्ठ पर ।

ओं महः पुनातु हृदये । इस मन्त्र से हृदय पर ।

ओं जनः पुनातु नाभ्याम् । इस मन्त्र से नाभि पर ।

ओं तपः पुनातु पादयोः । इस मन्त्र से दोनों पैरों पर ।

ओं सत्यं पुनातु पुनश्शिरसि। इस मन्त्र से पुनः शिर पर ।

ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र । इस मन्त्र से सब अङ्गों पर छींटा देवे ।

इस प्रकार उपर्युक्त मन्त्रों द्वारा जल से मार्जन करते हुए ईश्वर के प्रार्थना करे कि "वह मन्त्रों में निर्दिष्ट हमारे सभी अङ्गों को पवित्र करे।"

प्राणायाम–मन्त्र

निम्न मन्त्रों के अर्थों की मन में भावना करते हुए जपपूर्वक न्यून से न्यून तीन [1]प्राणायाम करे।

ओं भूः । ओं भुवः । ओं स्वः । ओं महः । ओं जनः । ओं तपः । ओं सत्यम् ।

(तैत्ति० प्रपा० १० । अनु० २७ ।।)

---

१ (i) पुनः समन्त्रक प्राणायम (सत्यार्थ प्रकाश)

(ii) पूर्वोक्त रीति से प्राणायाम की क्रिया करता जावे और नीचे लिखे मन्त्र का जप करता जाए। (संस्कार विधिः)

(iii) इन के उच्चारण और अर्थ विचार पूर्वक उस प्रकार के

इस प्रकार प्राणायाम करके अर्थात् भीतर के वायु को बल से नासिका द्वारा बाहर फैंक के, यथाशक्ति बाहर ही रोक के, पुनः

अनुसार प्राणायामों को करे। (पंचमहायज्ञविधि)

(iv) इस रीति से कम से कम तीन और अधिक से अधिक २१ *प्राणायाम करे। (सं० वि०)

....

*एक "बाह्य विषय" अर्थात् बाहर ही अधिक रोकना। दूसरा "आभ्यन्तर" अर्थात् भीतर जितना प्राण रोका जाय उतना रोक के। तीसरा "स्तम्भवृत्ति" अर्थात् एक ही बार जहाँ का तहाँ प्राण को यथाशक्ति रोक देना। चौथा "बाह्याभ्यन्तराक्षेपी" अर्थात् जब प्राण भीतर से बाहर निकलने लगे तब उस के विरुद्ध न निकलने देने के लिये बाहर से भीतर लेकर और जब बाहर से भीतर आने लगे, तब भीतर से बाहर की ओर प्राण को धक्का देकर रोकता जाय। ऐसे एक दूसरे के विरुद्ध क्रिया करें, तो दोनों की गति रुक कर प्राण अपने वश में होने से मन और इन्द्रियाँ भी स्वाधीन होते हैं। बल पुरुषार्थ बढ़ कर बुद्धि ऐसी तीव्र, सूक्ष्म रूप हो जाती है कि जो बहुत कठिन और सूक्ष्म विषय को भी शीघ्र ग्रहण करती है। इससे मनुष्य शरीर में वीर्य वृद्धि को प्राप्त होकर स्थिर बल, पराक्रम, जितेन्द्रियता, सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझकर उपस्थित कर लेगा। स्त्री भी इसी प्रकार योगाभ्यास करे।

(सत्यार्थ प्रकाश)

धीरे-धीरे भीतर ले के, पुनः बल से बाहर फैंक के रोकने से [1]मन और आत्मा को स्थिर करके आत्मा के बीच में जो अन्तर्यामी रूप से ज्ञान और आनन्द स्वरूप व्यापक परमेश्वर है, उस में अपने आप को मग्न करके अत्यन्त आनन्दित होना चाहिये। जैसे गोताखोर जल में डुबकी मार के शुद्ध हो के बाहर आता है, वैसे ही सब जीव लोग अपनी आत्माओं को शुद्ध ज्ञान और आनन्दस्वरूप व्यापक परमेश्वर में मग्न करके नित्य शुद्ध करें।

अघमर्षण–मन्त्र

[2]तत्पश्चात् सृष्टिकर्ता परमेश्वर और सृष्टिक्रम का विचार नीचे लिखे मन्त्रों से करे और जगदीश्वर को सर्वव्यापक न्यायकारी सर्वत्र सर्वदा सब जीवों के कर्मों के द्रष्टा को निश्चित मान के पाप की ओर अपने आत्मा और मन को कभी न जाने देवे, किन्तु सदा धर्मयुक्त कर्मों में वर्तमान रखे।

ओ३म् ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥१॥
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥२॥

---

१ पंचमहायज्ञविधिः।
२ संस्कारविधिः।

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥३॥
ऋ० १०.१९०.१–३ ॥

[1] वेद से ले के पृथिवी पर्यन्त जो यह जगत् है, सो सब ईश्वर के नित्य सामर्थ्य से ही प्रकाशित हुआ है, और ईश्वर सब को उत्पन्न करके सब में व्यापक हो के अन्तर्यामी रूप से सब के पाप-पुण्यों को देखता हुआ पक्षपात छोड़ के सत्य न्याय से सब को यथावत् फल दे रहा है । [2]ऐसा निश्चित जान के ईश्वर से भय करके, सब मनुष्यों को उचित है कि मन वचन और कर्म से पाप कर्मों को कभी न करे, इसी का नाम अघमर्षण है, अर्थात् ईश्वर सब के अन्तःकरण के कर्मों को देख रहा है, इस से पाप कर्मों का आचरण मनुष्य लोग सर्वथा छोड़ देवें ।

आचमन–मन्त्र

ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शंयोरभि स्रवन्तु नः ॥ यजु० ३६-१२ ॥

इस मन्त्र से पुनः तीन आचमन करे ।

---

१ पञ्चमहायज्ञविधिः
२ पञ्चमहायज्ञविधिः

[1] तदनन्तर गायत्र्यादि मन्त्रों के अर्थविचारपूर्वक परमेश्वर की स्तुति अर्थात् परमेश्वर के गुण और उपकार का ध्यान कर, पश्चात् प्रार्थना करे। अर्थात् सब उत्तम कर्मों में ईश्वर को सहाय चाहें। और सदा पश्चाताप करें कि मनुष्य शरीर धारण कर के हम लोगों से जगत् का उपकार कुछ भी नही बनता। जैसा कि ईश्वर ने सब पदार्थों की उत्पत्ति कर के सब जगत् का उपकार किया है वैसे हम लोग भी सब का उपकार करें, इस काम में परमेश्वर हम को सहाय करे कि जिस से हम लोग सब को सदा सुख देते रहें[2]।

तदनन्तर ईश्वर की उपासना करे, सो दो प्रकार की है—एक [3]सगुण और दूसरी निर्गुण। अर्थात् उपासक को चाहिए कि

---

१ टिप्पणीः—सन्ध्या के आरम्भ में शिखा को बान्धते हुए जिस गायत्री मन्त्र का उच्चारण किया, वहाँ से लेकर यहाँ तक जिन आचमन आदि के मन्त्रों का क्रिया करते हुए उच्चारण किया, उन के अर्थों का अब भली भान्ति विचार करे और उस से अपने जीवन का मिलान करे।

२ पञ्चमहायज्ञविधिः।

३ सगुण-निर्गुण-उपासना—जैसे ईश्वर, सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, चेतन, व्यापक, अन्तर्यामी, सब का उत्पादक, धारण करने हारा, मंगलमय, शुद्ध, सनातन, ज्ञान और

वह समस्त ब्रह्माण्ड के रचयिता, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सच्चिदानन्दस्वरूप, दयालु, न्यायकारी, शुद्धस्वरूप, प्रभु की उपासना करे–ध्यान करे–चिन्तन करे। तथा उस के गुण-कर्मों को अपने जीवन में धारण करे। इस प्रकार प्रभु के गुणों को स्मरण करते हुए जो प्रभु की उपासना है, वह सगुण उपासना है। ऐसे ही उपासक जब अपने उपास्यदेव परमेश्वर को अनादि, अनन्त,

---

आनन्दस्वरूप है,धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष पदार्थों को देने वाला, सब का पिता, माता, बन्धु, मित्र, राजा और न्यायाधीश है, इत्यादि ईश्वर के गुण विचार पूर्वक उपासना करने का नाम सगुणोपासना है तथा निर्गुणोपासना इस प्रकार से करनी चाहिये कि ईश्वर अनादि, अनन्त है–जिस का आदि और अन्त नहीं, अजन्मा, अमृत्य-जिस का जन्म-मरण नहीं, निराकार, निर्विकार जिस का आकार और जिस में कोई विकार नहीं, जिस में रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द, अन्याय, अधर्म, रोग, दोष, अज्ञान और मलीनता नहीं है; जिस का परिणाम, छेदन, बन्धन, इन्द्रियों से दर्शन ग्रहण और कम्पन नहीं होता; जो ह्रस्व और दीर्घ और शोकातुर कभी नहीं होता; जिस को भूख, प्यास, शीतोष्ण, हर्ष और शोक कभी नहीं होता; जो उलटा काम कभी नहीं करता इत्यादि जो जगत् के गुणों से ईश्वर को अलग जान के ध्यान करता है, वह निर्गुणोपासना कहलाती है।

निराकार, निर्विकार, निर्लेप, जानकर और अज्ञान अधर्म अन्याय असत्य आदि से सर्वथा रहित समझ कर स्मरण करता है और स्वयं भी सतत् अज्ञान, अधर्म, अन्याय, असत्यादि दोषों से दूर रहने का प्रयास करता हुआ निर्लेप निर्विकार बनने का हार्दिक प्रयास करता है, तो यह उपासना निर्गुणोपासना कहलाती है।

मनसा परिक्रमा मन्त्र

सब दिशाओं में व्यापक परमेश्वर की सन्ध्या में अग्नि, इन्द्र, वरुण आदि नामों से स्तुति प्रार्थना करे[1]।

ओ३म् प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम
इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि
यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥१॥

---

१ उपासक निम्नलिखित मन्त्रों का पाठ करते हुए इन के अर्थों की भावना करे। इस प्रकार वह अपने मन को पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तर और नीचे तथा ऊपर सर्व दिशाओं में सर्वत्र प्रभु की नानाविध सामर्थ्यों एवं नाना प्रकार के कार्यों का बोध कराते हुए घुमा फिरा एवं थका कर अन्त में उस प्रभु में ही स्थिर करने का अभ्यास करे।

दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥२॥

प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥३॥

उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥४॥

ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३स्मान्–द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥५॥

ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥६॥ अथर्व०का०३. अ०६.व०२७.मं०१–६ ॥

इन मन्त्रों को पढ़ते जाना और अपने मन के चारों ओर बाहर भीतर परमात्मा को पूर्ण जानकर निर्भय निश्शङ्क उत्साही आनन्दित पुरुषार्थी रहना। [संस्कारविधि]

उपस्थान मन्त्र

मनसा परिक्रमा के मन्त्रों द्वारा अपने चारो ओर, ऊपर नीचे सर्वत्र परमेश्वर को व्यापक समझ कर निम्नलिखित मन्त्रों से उस [1]परमात्मा का उपस्थान अर्थात् परमेश्वर के निकट मैं और मेरे अतिनिकट परमात्मा है ऐसी बुद्धि करके करे।

ओ३म् उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥१॥यजु० ३५.१४ ॥
उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥२॥ यजु० ३३.३१ ॥
चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष ँ सूर्य आत्मा
जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥३॥ यजु० ७.४२॥
तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः
शतं जीवेम शरदः शत ँ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम
शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं
भूयश्च शरदः शतात् ॥४॥ यजु० ३६;२४ ॥

---

१ संस्कारविधि

इस प्रकार "[1]प्रेम में अत्यन्त मग्न होके अपने आत्मा और मन को परमेश्वर में जोड़ के इन मन्त्रों से स्तुति और प्रार्थना सदा करते रहें।'

एवं इन मन्त्रों में परमात्मा के संनिकट हुआ-हुआ, उस में अत्यन्त मग्न हुआ-हुआ, उस के प्रेम में विभोर हुआ-हुआ उस से जो शान्ति और आनन्द प्राप्त करे, उस से शान्त और तृप्त होकर व्युत्थान काल में भी यह शान्ति और आनन्द बना रहे ऐसी सद्बुद्धि के लिये प्रार्थना करे।

गुरु-मन्त्र

[2]गायत्री मन्त्र के अर्थ विचार पूर्वक परमात्मा की स्तुति-प्रार्थना और उपासना करे।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः [1]प्रचोदयात्॥यजु० ३६.३॥ऋ० ३.६२.१०॥

समर्पण

[2]इस प्रकार सब मन्त्रों के अर्थों से परमेश्वर की सम्यक् उपासना कर के निम्नलिखित वाक्य से उपासक अपने अहंकार

---

१ पंचमहायज्ञविधिः

२ संस्कारविधिः

की निवृत्ति के लिये किये गए सन्ध्योपासना रूप कर्म का परमेश्वर के आगे समर्पण करे।

हे ईश्वर दयानिधे ! भवत्कृपयानेन जपोपासनादि-कर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः ॥

नमस्कार—मन्त्र

अन्त में उपासक निम्नलिखित मन्त्र से उपास्यदेव परमेश्वर को नमस्कार करे।

ओ३म् नमः शम्भवाय च मयोभवाय च
नमः शङ्कराय च मयस्कराय च
नमः शिवाय च शिवतराय च ॥

यजु० १६.४१ ॥



१ गायत्री मन्त्र का उच्चारण, अर्थज्ञान और उस के अनुसार अपने चाल-चलन को करे। (सत्यार्थ प्रकाश)

२ पंचमहायज्ञविधिः

ब्रह्मयज्ञ-वैदिक संन्ध्या

[सरल सुबोध अर्थ]

गायत्री-मन्त्र

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ।।यजु० ३६-३।।ऋ० ३-६२-१०।।

हे सत् चित् आनन्दस्वरूप परमेश्वर ! हे प्राणों के प्राण, दुःखविनाशक, सुखस्वरूप प्यारे परमात्मन् ! सब जगत् को उत्पन्न करने वाले, सर्व प्रेरक, दिव्य गुणों के भण्डार, सब सुखों के दाता तुझ सविता देव का वरण करने योग्य अत्यन्त श्रेष्ठ, पापों को भस्म करने वाला जो विशुद्ध तेजःस्वरूप है, उस को हम अपने आत्मा में श्रद्धा भक्ति से धारण करते हैं, वा उस का हम अत्यन्त श्रद्धा भक्ति से ध्यान करते हैं। यह इसलिये कि जो तू पूर्वोक्त गुणविशिष्ट सविता देव है वह तू हमारी बुद्धियों को सदा सब बुरे कर्मों से हटा कर सदा सब उत्तम कर्मों में प्रेरित करे।

आचमन-मन्त्र

ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शंयोरभि स्रवन्तु नः ।। यजु० ३६-१२ ।।

हे दिव्यगुणसम्पन्न सर्वव्यापक प्रभुदेव ! तू अभीष्ट-सांसारिक सुख-सौभाग्य के लिये पूर्णानन्द की प्राप्ति के लिये हमें सुखकारी

और कल्याणकारी हो। हे परमेश्वर तू हमारे सब रोग शान्त कर और हमारे सब भयों का निवारण कर हम पर सब ओर से अर्थात् बाहर-भीतर से ऐसी सुख-सौभाग्यों और आनन्दों की वर्षा कर कि जिस से हम सब प्रकार से तर-बतर होकर बाहर-भीतर से सुखी, शान्त और तृप्त हो जायें।

इन्द्रियस्पर्श-मन्त्र

ओं वाक् वाक्। ओं प्राणः प्राणः। ओं चक्षुः चक्षुः।
ओं श्रोत्रं श्रोत्रम्। ओं नाभिः। ओं हृदयम्। ओं कण्ठः।
ओं शिरः। ओं बाहुभ्यां यशोबलम्। ओं करतलकरपृष्ठे॥

[1]हे ईश्वर! आपकी कृपा और हमारे पुरुषार्थ से हमारी वाणी और रसना [बोलने और रस लेने वाली रसना इन्द्रिय] सदा यश और बल से युक्त हो। हे ईश्वर! हमारी नासिका के दोनों छिद्रों-अर्थात् दोनों नथनों में प्रवाहित होने वाला प्राण सदा यश और बल से युक्त हो। हे ईश्वर! हमारे दोनों नेत्र सदा यश और बल से युक्त हों। हे ईश्वर! हमारे दोनों श्रोत्र-कान सदा यश और बल से युक्त हों। हे ईश्वर! हमारी नाभिः सदा यश और बल से युक्त हो। हे ईश्वर! हमारा हृदय सदा यश और

१– उपासक को चाहिये कि जैसी प्रार्थना करे, वैसा ही वह बनने का भी जी-जान से पुरुषार्थ करे।

बल वाला हो। हे ईश्वर! हमारा कण्ठ सदा यश और बल से युक्त हो। हे ईश्वर! हमारा शिर–मस्तिष्क सदा यश और बल वाला हो। हे ईश्वर! हमारी भुजाओं के द्वारा हमें सदा यश और बल प्राप्त हो। हे ईश्वर! हमारे हाथ का तल-हथेली और पृष्ठ-हाथ की पीठ सदा यश ओर बल से युक्त हों।

हे परमेश्वर! इस प्रकार तेरी अपार अनुकम्पा से और हमारे पुरुषार्थ से हमारी उपर्युक्त सभी इन्द्रियाँ [2]यश और बल से युक्त हों वा यशोरूप बल से युक्त हों।

मार्जन-मन्त्र

ओं भूः पुनातु शिरसि। ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः।
ओं स्वः पुनातु कण्ठे। ओं महः पुनातु हृदये।
ओं जनः पुनातु नाभ्याम्। ओं तपः पुनातु पादयोः।
ओं सत्यं पुनातु पुनश्शिरसि। ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र॥

हे सत्स्वरूप, प्राणों से भी प्यारे परमेश्वर! आप हमारे शिर को पवित्र करो। हे चित्स्वरूप–चेतनस्वरूप–ज्ञानस्वरूप, दुःखों को दूर करने वाले प्रभो! आप हमारे नेत्रों को पवित्र

२– (i) यशोबलम्–यशश्च बलञ्च-इति (समाहार द्वन्द्व) यशोबलम्। यश और बल। अथवा
(ii) यश एव बलम्-इति यशोबलं (कर्मधारय) यश रूप बल।

करो। हे सुखस्वरूप–आनन्दस्वरूप प्रभो! आप हमारे कण्ठ को पवित्र करो। हे सब से महान् और सब के लिये समान रूप से पूजनीय प्रभो! आप हमारे हृदय को पवित्र करो। हे सब को उत्पन्न करने वाले, सब के जनक जगदीश्वर! आप हमारी नाभि को पवित्र करो। हे दुष्टों को सन्तप्त करने वाले तपःस्वरूप प्रभो! आप हमारे पैरों को पवित्र करो। हे सत्यस्वरूप प्रभो! आप हमारे शिर को पुनः पुनः पवित्र करो। हे आकाश के समान सर्वव्यापक महान् प्रभो! आप हमारे सब अङ्ग-प्रत्यङ्गों को पवित्र करो।

हे प्रभो! आप हमें ऐसी शक्ति प्रदान करो कि जिस से हम अपने इन अङ्ग-प्रत्यङ्गों को ऐसे शुद्ध पवित्र रख सकें कि जिस से इन के द्वारा हम से कभी भी कोई भी पापाचरण न हो।

प्राणायाम–मन्त्र

[1]ओं भूः। ओं भूवः। ओं स्वः। ओं महः। ओं जनः। ओं तपः। ओं सत्यम् ॥

तैत्ति० आ० प्रपा० १० ।अनु० २७ ॥

---

१ इन के उच्चारण और अर्थ विचार पूर्वक न्यून से न्यून ३ और अधिक से अधिक २१ प्राणायाम करें।

(प्राणायाम—नाभि के नीचे से मूलेन्द्रिय को ऊपर संकोच करके हृदय के वायु को बल से बाहर निकाल के यथाशक्ति

1हे सर्वव्यापक सर्वरक्षक प्रभो ! आप सत्स्वरूप हैं, प्राणों से भी प्यारे हैं। आप ज्ञानस्वरूप हैं, सब के दुःखों दूर करने वाले हैं। आप सुखस्वरूप हैं, संसार में सब को सुख-सौभाग्यों से सम्पन्न करने वाले हैं; आप आनन्दस्वरूप हैं, अपने सच्चे-सुच्चे उपासकों को आनन्दविभोर करने वाले हैं। आप महान् हैं, आप सब से बढ़े हैं, सब दृष्टियों से बढ़ कर हैं, अतः हम सब के लिये पूजनीय हैं। आप सब के जनक हैं–उत्पादक हैं। आप तपःस्वरूप हैं, दुष्टों को दण्ड देने वाले हैं। आप सत्यस्वरूप हैं।

हे सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी सर्वरक्षक सर्वेश्वर ! हमें ऐसी सामर्थ्य प्रदान करो कि आप के इन गुणों का मनन-चिन्तन करते हुए हम भी अपना जीवन ऐसा बना सकें।

रोकें। पश्चात् धीरे-धीरे भीतर ग्रहण कर के कुछ चिर भीतर ही रोक के बाहर निकालें। यह एक प्राणायाम हुआ। इस प्रकार कम से कम तीन बार करें। इस से आत्मा और मन की स्थिति सम्पादन करें।)

१ अपने पुरुषार्थ और प्रभु की अपार कृपा से इन्द्रियाँ जब कुछ शुद्ध–पवित्र होने लगें तो अपने को गौण कर इस सब का श्रेय प्रभु को देते हुए उसी की महत्ता को हृदय से अनुभव करते हुए इन व्याहृति मन्त्रों का अर्थ विचार पूर्वक उच्चारण करते हुए प्राणायाम करें।

अघमर्षण-मन्त्र

ओ३म् ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥१॥
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत ।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥२॥
सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥३॥

हे परमपिता परमेश्वर ! सब विद्याओं के भण्डार यथार्थ ज्ञान वेद और सत्व, रजः और तमोगुण वाली त्रिगुणात्मक प्रकृति [जो इस स्थूल और सूक्ष्म जगत् का कारण है उस] को आप ने ही अपने देदीप्यमान ज्ञानमय तप से उत्पन्न किया। आप ने ही [1]महारात्रि अर्थात् प्रलयावस्था को उत्पन्न किया। आप ने ही जल से परिपूर्ण पृथिवी और अन्तरिक्ष में स्थित महा समुद्र को उत्पन्न किया।

जल से परिपूर्ण पृथिवीस्थ और अन्तरिक्षस्थ समुद्र के पश्चात् सम्वत्सर अर्थात् क्षण, मुहूर्त, प्रहर, दिवस, मास, वर्ष आदि काल को आप ने उत्पन्न किया। समस्त संसार को अपने सहज

---

१ जब-जब सृष्टि बनती है, उस के पूर्व सब आकाश अन्धकार रूप रहता है, और उसी अन्धकार में सब जगत् के पदार्थ और सब जीव ढके हुए रहते हैं, उसी का नाम महारात्रि है।

स्वभाव से वश में करने वाले प्रभुदेव ! आप ने दिन और रात को बनाया। हे सब जगत् का धारण-पोषण करने वाले प्रभुदेव ! आप ने दिन रात के कर्ता इस सूर्य-चन्द्र को रचा। यह सब कुछ आप ने जैसे पूर्वकल्प में रचा था वैसे ही इस कल्प में भी रचा है। इसी प्रकार आप ने द्युलोक, पृथिवीलोक, अन्तरिक्षलोक और [अन्य सब मध्यवर्ती लोक-लोकान्तरों को और उन लोकों में स्थित सुख विशेष को] स्वर्ग को-सुखविशेष के लोक को भी बनाया।

हे परमेश्वर ! आप अनादि काल से इन सब लोक-लोकान्तरों को बना रहे हो। आप का ज्ञान इस विषय में विपरीत कभी नहीं होता, किन्तु पूर्ण और अनन्त होने से सर्वदा एकरस ही रहता है। उस में वृद्धि वा क्षय तथा उलटापन कभी नहीं होता। इसी कारण से आप इस समस्त सृष्टि को ठीक ऐसे ही अब बना रहे हैं जैसे कि पूर्वकल्प में बना रहे थे और आगे भी ऐसे ही सदा बनाते रहेंगे। हे जगदीश्वर ! सो यह वेद से लेकर पृथिवी पर्यन्त जो भी यह कार्यरूप जगत् है सो वह सब आप की ही नित्य एवं अद्वितीय सामर्थ्य से प्रकाशित हुआ है। आप ही इस संसार में सभी प्राणियों को उत्पन्न कर के सब में व्यापक हो के अन्तर्यामी रूप से सब के पाप-पुण्यों को भली-भान्ति देखते हुए पक्षपात छोड़ कर सदा सत्य न्याय से सब को यथावत् फल प्रदान कर रहे हो। यह निश्चित जानकर [कि आप सबके बाहर-भीतर विराजमान हुए-हुए सब की अच्छी-बुरी सब वृत्ति-प्रवृत्तियों को देख रहे हैं

और तदनुकूल ही सब को अच्छा-बुरा फल प्रदान कर रहे हैं तो यह सोचकर] आप से अपने मन ही मन में भय अनुभव करते हुए हम सदा अपने आप को पाप कर्मों से मन वचन कर्म से पृथक् रखने का हार्दिक प्रयास करते हैं।

हे प्रभुवर ! इस प्रकार आप की समस्त संसार की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय करने की अद्वितीय महान् सामर्थ्य और पक्षपात रहित सब के प्रति समान रूप से निश्चल न्याय व्यवस्था को हृदय से अनुभव करते हुए [यह सोचकर कि हम पाप करके भले ही इस लौकिक राजा की दण्ड व्यवस्था से बच जाएं, पर तुझ सर्वव्यापक प्रभु की मार से कभी नहीं बच सकते] हम सहज ही पाप कर्मों से सदा कुछ पृथक् रहने में समर्थ हो सके।

अथवा

अपने सर्वतः प्रदीप्त तप से प्रभु ने जो प्राकृतिक एवं नैतिक नियमों को प्रकाशित किया है उन प्राकृतिक एवं नैतिक नियमों का पूर्ण पुरुषार्थ पूर्वक पालन करते हुए हम सच्चे तपस्वी बनें। फिर जैसे 'रात्रि' दिन भर के थके-मान्दे अपनी शरण में आए हुए मनुष्यों को पूर्ण विश्राम प्रदान कर पुनः प्रातः अपने कर्तव्यों के प्रति समर्थ, सजग एवं उत्साह सम्पन्न कर देती है, वैसे ही हम भी रात्रि रूप बन कर उदास और हताश हुए-हुए अपने समीप शरण में आए हुए मनुष्यों को पूर्ण विश्राम प्रदान कर पुनः उन्हें सोत्साह अपने कर्तव्यों के प्रति समर्थ करें। हम समुद्र बनकर सब के लिये

अपना हृदय इतना विशाल बना दें कि जैसे ये मत्स्य आदि प्राणी इस समुद्र में सम्मोद-अत्यन्त हर्ष अनुभव करते हैं वैसे ही सब हमारे सम्पर्क में हर्ष अनुभव करें। फिर हम अन्तरिक्ष के समुद्र बनकर अपने सम्पर्क में आए हुए मनुष्यों की चित्तरूपी भूमि पर ऐसे ज्ञान पूर्ण सद्व्यवहारों की वर्षा करें कि जिस से उन की चित्तरूपी भूमि सदा हरी-भरी होवे। पृथिवीस्थ एवं अन्तरिक्षस्थ समुद्र से आगे बढ़ कर हम संवत्सर बनें अर्थात् जैसे संवत्सर-वर्ष–काल में सब रहते हैं–सदा बसते हैं वैसे हमारे हृदय में सब बसते रहें। ऐसी अवस्था में जब कि सब हमारे हृदय में बसते रहें, हम अपनी इन्द्रियों को पूर्णतया अपने वश में किए हुए अर्थात् अपने स्वार्थों से सर्वथा ऊपर उठे हुए-हुए दिन-रात अर्थात् सब समयों में संसार के उद्धार में लगे रहें। प्रभुदेव ! यह सब कुछ करते हुए भी हम अपने जीवन के प्रति सदा सजग रहकर उस के धाता-विधाता-सच्चे निर्माण करने वाले बनकर सूर्य-चन्द्र सम अपने नेत्रों [श्रोत्र आदि] को ज्ञान ज्योति से देदीप्यमान-प्रकाशमान बनाएं, अपने द्यौ, पृथिवी और अन्तरिक्ष अर्थात् अपने मस्तिष्क, पैरों तथा नाभिः प्रदेश का पूर्णतया निर्माण कर उस से ऐसे स्वः–सुख विशेष को प्राप्त करें जैसे कि कभी पूर्व हम ने इन का पूर्णतया निर्माण कर सुख विशेष पाया था, मोक्ष पाकर आनन्दविशेष अनुभव किया था। इस प्रकार हम यों अपना निर्माण करते हुए शनैः शनैः अपने स्वार्थों से ऊपर उठते और परोपकार में लगते

हुए हम अपने अघों-पापों से पृथक् होते हुए धीरे-धीरे तुझ जगद्-विधाता सर्वाधार ब्रह्म का प्यार एवं आशीर्वाद पाने के पात्र बनते रहें।

आचमन-मन्त्र

ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभि स्रवन्तु नः॥ यजु० ३६.१२ ॥

हे दिव्य गुणधाम सर्वव्यापक प्रभो! तू हम पर बाहर-भीतर से ऐसे सुख-सौभाग्यों और आनन्दों की वर्षा कर कि जिस से हम सब प्रकार से सुखी शान्त और तृप्त रह सकें।

गायत्र्यादि मन्त्रों का अर्थ विचार, आत्मनिरीक्षण पूर्वक प्रार्थना [तदनन्तर गायत्र्यादि मन्त्रों का अर्थ विचार, परमेश्वर के गुण कर्म स्वभावों और उपकारों का स्तवन एवं ध्यान पूर्वक आत्मनिरीक्षण करना चाहिये। आत्मनिरीक्षण करने के अनन्तर पश्चाताप कर पुनः अपने उज्वल भविष्य के लिये उत्तमोत्तम सङ्कल्प कर परमेश्वर से उन की सिद्धि के लिये हृदय से प्रार्थना करनी चाहिये।]

हे सच्चिदानन्द स्वरूप परमेश्वर! तुझ सन्मार्ग के प्रेरक सविता देव के अत्यन्त वरणीय शुद्ध तेजः स्वरूप का हम ने चिन्तन किया, ध्यान किया, और उस को अपने में धारण करने का हार्दिक प्रयास भी किया। ऐसा करके हम ने तुझ से पर्याप्त सत्प्रेरणाएं भी प्राप्त कीं।

हे दिव्यगुणों से युक्त सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी परमेश्वर ! तुझ से सत्प्रेरणा प्राप्त कर के हम केवल सांसारिक सुख-सौभाग्यों के पीछे ही नहीं दौड़ते रहे वरन् हम इन बाह्य धन-वैभव के साथ-साथ आन्तरिक वैभव आनन्द के पान करने के लिये भी प्रयास करते रहे । और तदनुसार आप से प्रार्थना भी करते रहे, कि—"आप बाहर-भीतर से हम पर सुख एवं आनन्दों की ऐसी वर्षा करें कि जिससे हम सदा शरीर से नीरोग हों और मन आत्मा से सदा शान्त निर्भय और तृप्त हों।

हम प्रथम केवल सामान्य ढंग से ही अपने उन्नत होने के लिये पुरुषार्थ करते हैं, अर्थात् हम अपने अभीष्ट सुख-सौभाग्यों और आन्तरिक आनन्दों की प्राप्ति के लिये वा अपने लोक-परलोक को सुख-सौभाग्य एवं आनन्दमय बनाने के लिये 'ओ३म् वाक्-वाक्' इत्यादि मन्त्रों से तेरा नाम ले-ले कर अपनी इन इन्द्रियों को यश एवं वल वाली वा यशोरूप बलवाली बनाने का हार्दिक प्रयास करते हैं ।

पर इस प्रकार हृदय से पूर्ण पुरुषार्थ करते हुए भी जब हम अपनी इन इन्द्रियों को पूर्णतया पवित्र करने में अपने को असमर्थ सा अनुभव करते हैं । अर्थात् इस विषय में जब हम पूर्णतया निराश और हताश से हो जाते हैं तो उस समय फिर हम बड़ी श्रद्धा से तेरी शरण में विराजमान हुए-हुए तुझ से ही अपने अन्तःकरण की टीस के साथ "ओ३म् भूः पुनातु शिरसि ।" इत्यादि मन्त्रों से यह

प्रार्थना करते हैं कि, "हे प्राणों से प्यारे और सब जग से न्यारे सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी दिव्य देव ! अब तू ही हमारे सिर, नेत्र, श्रोत्र, कण्ठ, हृदय, नाभि, हस्त, पाद आदि अङ्ग-प्रत्यङ्गों को पवित्र कर। क्योंकि हे प्रभुवर ! हमारे पुरुषार्थ में जब आप की कृपा समा जायेगी तो फिर निःसन्देह हमारी इन इन्द्रियों में पूर्णतया पवित्रता आजायेगी। ऐसा होने पर अर्थात् इन इन्द्रियों के पूर्णतया शुद्ध-पवित्र बन जाने पर फिर हमारे लोक-परलोक अर्थात् अभ्युदय और निःश्रेयस के बनने में फिर किसी प्रकार की देरी नहीं लगेगी। अतः मैं अब अपने पूर्ण पुरुषार्थ से भी बढ़ कर आप की कृपा को महत्वपूर्ण अनुभव करता हूँ।

हे प्रभुवर ! इस प्रकार हमारे पुरुषार्थ में आप की अनुपम कृपा के समाविष्ट हो जाने पर जब हमारी इन्द्रियां शनैः शनैः कुछ शुद्ध-पवित्र होने लगीं और उस से जब हमारा जीवन कुछ सुखी, शान्त और तृप्त होने लगा तो इस से फिर हम में कुछ गर्व आने लगा, यह सोचकर कि अब तो हम ही सब से उत्तम, सब से अधिक पवित्र, सब से बढ़कर सच्चे बन गए हैं। परन्तु पुनः जब हम 'ओ३म् भूः, ओ३म् भुवः, ओ३म् स्वः, इत्यादि सप्त व्याहृति मन्त्रों के मानस जप एवं चिन्तन पूर्वक प्राणायाम का अभ्यास करते हैं तो फिर बहुत ही शीघ्र हमें यह आभास होने लगता है कि वह सब कुछ तो तू प्रभु ही है, हम तो कुछ भी नहीं हैं। और अगर हम थोड़े बहुत कुछ हो भी सके हैं तो वह भी तुझ प्यारे प्रभु की ही कृपा से ही

सके हैं। अतः फिर श्रद्धा-भक्ति पूर्वक तुझ प्यारे प्रभु को ही सम्मुख रख कर हमारे हृदय से ये व्याहृति मन्त्र 'ओ३म् भूः' इत्यादि प्रस्फुरित होने लगते हैं। और तब हृदय से हम यह अनुभव करने लगते हैं कि—"हे सर्वरक्षक, सर्वान्तर्यामी परमेश्वर! आप ही प्राणाधार हो, दुःखविनाशक हो, सुखस्वरूप हो-हम सब को सुख-सौभाग्य के देने वाले हो, सब से महान् हो, सब के जनक जगदीश्वर हो, तप में मैं सब से अधिक बढ़कर हो, सत्यस्वरूप हो। हम तो आप के सम्मुख अत्यन्त तुच्छ हैं, फिर भी हे प्रभुदेव! आज हम जो कुछ भी हैं, वह सब कुछ आप के ही सम्पर्क एवं आप की अनुकम्पा से ही है।"

इस प्रकार इतने शुद्ध-पवित्र हो कर कुछ महान् बन जाने पर भी हमें अपने इस निर्माण में जब अपना पुरुषार्थ गौण लगा और आप की कृपा मुख्य लगी तो तब हमें और भी अधिक प्रसन्नता हुई। इस प्रसन्नता में तब हमारी आप में और भी अधिक एकाग्रता बढ़ी, आस्था बढ़ी, श्रद्धा बढ़ी, और हमने तब आप को ही प्राणाधार, विघ्नविनाशक, सुखस्वरूप, सर्वतो अधिक महान्, सब का जनक, तपःस्वरूप, सत्य-न्याय का परम अद्वितीय स्रोत समझा और अपने को अत्यन्त सामान्य सा व्यक्ति समझा।

हे दिव्य देव! तू हमें तब इतना महान् अनुभव हुआ कि सब जगत् का रचने हारा, उस को स्थिति में रखने वाला और

उस का अपनी न्याय व्यवस्था से पालन-पोषण करने वाला तथा अन्त में प्रलय भी करने वाला तू ही हमारी समझ में आया।

इस तरह जब हमें तेरी इस महान् सामर्थ्य का बोध हुआ तो उस से हम ने यह समझा कि—"कोई भी व्यक्ति, कहीं पर भी कितना भी बुरा से बुरा कर्म क्यों न कर ले और ऐसा करने पर भी वह यदि इस सांसारिक राजा एवं न्यायाधीश की आँखों से अर्थात् उन की दण्ड-व्यवस्था से भी भले ही क्यों न बच जाए, परन्तु सृष्ट्युत्पति, स्थिति एवं प्रलय करने की अद्भुत् सामर्थ्य के धनी तुझ महान् शक्तिशाली परमात्मा से अर्थात् तेरी दृष्टि से-तेरी न्यायानुकूल दण्डव्यवस्था से वह व्यक्ति लाख प्रयत्न करने पर भी कभी भी, कहीं भी नहीं बच सकता। तो फिर ऐसी अवस्था में हम भी भला कैसे बच सकते हैं? यह विचार मन में आते ही, अर्थात् तेरी निश्चल-अटल न्यायव्यवस्था-दण्डव्यवस्था का भय मन में व्याप्त होने पर ही तो हम अपने अघों का कुछ मर्षण कर सके, हम अपने पाप कर्मों से अपने को कुछ पृथक् रख सकने में समर्थ हो सके। इस पर भी हमें अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि तेरी इस निश्चल न्याय–व्यवस्था के बहाने ही हम किसी प्रकार पाप से बच सके और फिर पाप से बचने के परिणामस्वरूप हम अत्यन्त सन्ताप से भी बच सके।

हे प्रभुवर! आप सत् चित् आनन्दस्वरूप वा प्राणाधार दुःखविनाशक सुखस्वरूप, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी सब के धारण-पोषण करने वाले, दयालु, न्यायकारी, मंगलमय

शुद्ध सनातन ब्रह्म हैं। आप धर्म अर्थ काम मोक्ष के देने वाले सब के जननी-जनक माता-पिता, बन्धु, सखा, आचार्य, राजा और न्यायाधीश हैं। आप अनादि अनन्त निर्विकार अजन्मा और अमरणधर्मा हैं। आप अधर्म अन्याय अज्ञान रोग शोक आदि से सर्वथा परे हैं। भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख, हानि-लाभ, हर्ष और शोक आदि से आप सब प्रकार से ऊपर हैं। इस प्रकार अनन्त गुणों के भण्डार आप परम पिता परमेश्वर के हम जीवों पर अनन्त उपकार हैं। आप हम को इस जगत् में जहाँ उत्पन्न करते हैं वहाँ उत्पन्न करके हमें यों ही नहीं छोड़ देते वरन् हमारे पालन-पोषण के लिये नाना प्रकार के खाद्य-पेय, लेह्य-चूष्य [चाटने और चूसने योग्य] नाना-विध अन्न-गेहूँ, चना, मक्की, धान, मोठ, उदक, रस, दुग्ध आदि, आम,अमरूद,केले,सेब,सन्तरे, चीकू, नाशपाती आदि तथा नानाविध रत्न हीरे मोती आदि, सूर्य-चन्द्र पृथिवी आदि उपयोगी पदार्थों को उत्पन्न कर-कर के सदा इन के द्वारा हमारा हित साधते रहते हैं। इतना ही नहीं आप दिव्य गुणों के भण्डार सविता देव के रूप में हमें अपने वेद ज्ञान के द्वारा एवं भीतर से सत्प्रेरणा दे-देकर हमें सदा ऐसी बुद्धि-सद्बुद्धि—प्रज्ञा-मेधा और ऋतम्भरा बुद्धि आदि हमें देते हैं कि जिस से हम जहाँ इस सांसारिक सर्वविध ऐश्वर्यों का सदुप्रयोग कर अपने इस लोक को सुखमय बना सकें वहां परलोक को भी आनन्दमय बना सकें। तात्पर्य यह है कि जहाँ हमारा अभ्युदय हो वहाँ हमारा निःश्रेयस भी हो।

प्रभुदेव ! इस प्रकार आप के गुण, कर्म, स्वभावों और उपकारों का जब हम स्तवन करते हैं, उन का मनन-चिन्तन और निदिध्यासन करते हुए जब हम आप का ध्यान करते हैं तो उस समय आप हमें इतने महान् दीखते हैं, इतने अनुपम अनुभव होते हैं, इतने विलक्षण लगते हैं कि हम अवाक् रह जाते हैं, हम दंग रह जाते हैं। उस समय तब हम उधर तुझ को देखते हैं और इधर आत्मनिरीक्षण करते हुए हम अपने आप को देखते हैं तो तब हमें ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे हम तो आप के सम्मुख कुछ हैं ही नहीं। तब तो सचमुच हमें ऐसा लगता है कि न हम में बल है, न हम में बुद्धि है, न हम में ज्ञान है, न हम में ध्यान है, न हम में सेवा भाव है, न हम में कुछ उपकार की भावना है, और न ही हमारा जीवन कुछ शुद्ध-पवित्र है। सच्ची बात तो यह है कि उस समय हम को अपना जीवन अत्यन्त फीका लगता है। और तब ऐसा लगता है कि जैसे अभी तक हमारा कुछ भी न बन सका हो……। तब फिर हमें अपने बीते हुए जीवन को और भी गहराई से देखने की इच्छा होती है। और फिर जब हम ऐसा करते हैं तो हमे ऐसा लगता है कि जैसे मनुष्य शरीर पा कर भी अभी तक इतने वर्षों में हम कुछ भी नहीं कर पाए, केवल खाने-पीने सोने जागने और सन्तान पैदा कर-कर के उसके पालन-पोषण में ही हम लगे रहे। अर्थात् हम सदा अपने स्वार्थ के खून्टे से ही बन्धे हुए उसी के चारों ओर ही घूमते रहे। हम ने न तो अब तक अपने

जीवन में उस प्यारे प्रभु के वेदगत आदेश उपदेश और प्रेरणाओं को भली भांति ध्यान से सुना है और न ही उन के अनुकूल आचरण कर अपने इस मानव जीवन को पूर्णतया शुद्ध-पवित्र बनाया है। न ही हम अब तक उस परम प्यारे और सब जग से न्यारे प्रभु का मन वचन और कर्म से कुछ ध्यान भजन आदि कर पाए और न ही उस परमेश्वर के प्रदान किये हुए ज्ञान-विज्ञानों से वा प्रदान किए हुए सब पदार्थों से संसार का ही कुछ थोड़ा-बहुत उपकार कर पाए। हे नाथ ! यह जीवन तो हमारा प्रायः बहुत कुछ यों ही चला गया। अतः प्रभुवर ! अब आप हमें बल दो, बुद्धि दो, शक्ति दो, भक्ति दो ताकि हम आप के गुण कर्म स्वभावों एवं उपकारों पर मुग्ध हो कर तदनुकूल इस जीवन में सर्वथा शुद्ध-पवित्र हो कर, सर्वथा अपने इन निकृष्ट स्वार्थों से ऊपर उठ कर आप के समान इस जगत् का कुछ भला कर सकें, कुछ उपकार कर सकें। हे प्रभो ! इधर हमारा जी-जान से पुरुषार्थ हो, अर्थात् दृढ़ संकल्पपूर्वक आगे बढ़ने और ऊपर उठने की हमारी प्रवृत्ति हो, और उधर आप की महती कृपा हो तो तब यह सब सहज ही हो जाए। अर्थात् तब हमारा संसार भी अद्भुत बन जाए और अन्त में भवसागर से हमारा बेड़ा भी पार हो जाए। प्रभुदेव ! आप हमारे पुरुषार्थ में अपनी अनुकम्पा का समावेश कर हमें सब प्रकार से कृतार्थ करो। यही हमारी आप से हार्दिक विनति है।

अथवा

हे प्रभुवर ! तुझ को अत्यन्त महान् जान कर तेरे द्वारा वनाए हुए इन प्राकृतिक एवं नैतिक नियमों का प्रदीप्त तप से पालन कर के हम कुछ तपस्वी बने; रात्रि के समान महान् बन कर अपने समीप आए हुए थके-मान्दे, उदास-हताश लोगों को विश्राम एवं धैर्य्य प्रदान कर पुनः उन को अपने कर्तव्यों के प्रति कुछ सजग एवं उत्साहित करने वाले बने; समुद्र के समान सदा गम्भीर एवं विशाल हृदय वाले बन कर बहुतों का कुछ आश्रय बने; अन्तरिक्षस्थ समुद्र के समान अपने सम्पर्क में आए हुए प्राणियों की चित्त-रूपी भूमि पर सुखदायक वर्षा कर के उन की चित्त रूपी भूमि को कुछ हरा-भरा अर्थात् कुछ तृप्त और प्रसन्न कर सके; समुद्र और अर्णव से आगे बढ़ कर हम सम्वत्सर-काल के समान सब को अपने हृदयमन्दिर में बसाने वाले बन कर अपने जीवन का हृदय से निर्माण करते हुए अपने को सब प्रकार से शुद्ध-पवित्र बनाते हुए अपने स्वार्थों से कुछ ऊपर उठ सके, और तब सहज ही अपने हृदय में बसे हुए इन प्राणियों का अहर्निश हित साधनों में लग सके। तो हे प्रभुवर! इस प्रकार तेरी महती अनुकम्पा से-तेरी परम पवित्र प्रेरणाओं से और अपने इस जी-जान से किये हुए पुरुषार्थ से हम सहज ही पापों से वच सके।

हे प्रभुवर ! इस प्रकार हम तेरी निश्चल न्यायव्यवस्था वा दिव्य सामर्थ्य को देख-देख कर ज्यों-ज्यों हम पापों से बचने लगे

अथवा तेरे प्राकृतिक एवं नैतिक नियमों का पालन करते हुए अपने स्वार्थों से ऊपर उठकर ज्यों-ज्यों सब का हित साधने लगे, तो त्यों-त्यों [प्राकृतिक नियमों के पालन से] हमारे शारीरिक रोगों का शमन और [नैतिक नियमों के पालन से] हमारे मानसिक भयों का निवारण होने लगा; तथा तुझ सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी शान्तस्वरूप प्रभु की अपार अनुकम्पा से हम पर शनैः-शनैः सुख और आनन्दों की कुछ वर्षा भी होने लगी।

[1]मनसा परिक्रमा मन्त्र

[2]ओ३म् प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्यः॥

---

१ "मनसा परिक्रमा" का अर्थ है "मन के द्वारा परिक्रमा" अर्थात् मन में मन्त्रों के अनुसार विभिन्न दिशाओं की भावना करते हुए मन के द्वारा परिक्रमा करना। उपासक को चाहिये कि वह अपने इस अत्यन्त चञ्चल एवं महान् उद्योगी मन को उपर्युक्त मन्त्रों के भावों को ध्यान में रखते हुए पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और नीचे तथा ऊपर तथा बाहर-भीतर सर्वत्र प्रभु की ही नानाविध सामर्थ्यों और कार्यों का बोध कराते हुए खूब घुमा-फिरा एवं खूब थका कर अन्त में इस सृष्टि के

हे प्रभो ! आप हमारे सामने की ओर अर्थात् सम्मुख ज्ञानस्वरूप, प्रकाशस्वरूप, सब को अपने ज्ञानरूप प्रकाश से प्रकाशित करने वाले सब जगत् के अधिपति–राजा के रूप में विराजमान हैं। आप स्वयं सब प्रकार के बन्धनों से रहित हैं और हम सब उपासकों के भी सब प्रकार के बन्धनों को काट कर हमारी भी सब प्रकार से रक्षा करने वाले हैं। ये प्राण और ये सूर्य की देदीप्यमान रश्मियाँ आप के इषु हैं–बाण हैं। इस कारण कोई शुभ अशुभ करके–कोई पुण्य-पाप करके तेरी रक्षा, प्यार और मार से नहीं बच सकता। अतः तुझ ज्ञानस्वरूप सव गुणों के अधिपति परमेश्वर के उन सव स्वामित्व के गुणों को हमारा बारम्बार नमस्कार है, भवबन्धन के नाशक, सुख के रक्षक तुझ परमेश्वर के गुण और ये रचे पदार्थ जो सब जगत् की रक्षा करने वाले हैं उन को हमारा नमस्कार है। हे जगदीश्वर ! इस सृष्टि में ये प्राण और ये रचे हुए किरण आदि पदार्थ हैं जो धर्मात्माओं-पुण्यात्माओं की बाणों के समान रक्षा करने वाले और पापियों को बाणों के

अन्तिम स्रोत प्राणों से प्यारे प्रभु में ही स्थिर अर्थात् एकाग्र करने का हार्दिक प्रयास करे।

२. इन मन्त्रों को पढ़ते जाना और अपने मन में चारों ओर बाहर भीतर परमात्मा को [सर्वत्र परि] पूर्ण जानकर निर्भय, निश्शङ्क, उत्साही, आनन्दित, पुरुषार्थी रहना।

(संस्कार विधि गृहाश्रम प्रकरण)

समान पीड़ा पहुँचाने वाले हैं अर्थात् जो सज्जनों की रक्षा और दुर्जनों की ताड़ना के निमित्त हैं। ऐसे इषुरूप–बाणरूप इन गुण और पदार्थों को हमारा नमस्कार है। हे प्रभुवर! इसलिये कि जो कोई अज्ञानवश हम से द्वेष करता है और जिस किसी से हम अज्ञानवश द्वेष करते हैं, दोनों प्रकार के उस द्वेष भाव को हम आप के न्याय रूप जबड़े में धरते हैं–अर्थात् हम उस द्वेष भाव को आप की न्यायव्यवस्था पर छोड़ते हैं ताकि आप उसे नष्ट कर दें और हम उस द्वेष भाव से रहित होकर स्वयं किसी से वैर न करें और न ही कोई दूसरा हम से वैर करे, किन्तु हम सब लोग परस्पर प्रीतिपूर्वक प्रेमभाव से सदा वर्ता करें।

हे प्रभुवर! जब हम स्वस्थचित्त होकर बैठते हैं और वैठ कर जब हम मनन-चिन्तन करते हैं, आप का ध्यान करते हैं तो हम सदा आपको ही अपने सम्मुख पाते हैं। हे प्रभुदेव! आप अग्नि-स्वरूप हैं, ज्ञानस्वरूप हैं, ज्योतिस्वरूप हैं, अतः जो भी आपकी शरण में आता है उसेभी आप अपनी ज्योति से जाज्वल्यमान करदेते हैं-अपने ज्ञानप्रकाश से प्रकाशमान कर देते हैं। आप सब जगत् के अधिपति हैं, स्वामी हैं। आप सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त हैं तो भी हम सब की आप सब प्रकार से रक्षा करते हैं। प्रभुवर! ये प्राण और ये आदित्य की रश्मियाँ आप के बाण हैं। अर्थात् जैसे ये बाण पापियों को मारने और पुण्यात्माओं की रक्षा करने में काम आते हैं, इसी प्रकार ये प्राण भी दुष्टों को शीघ्र समाप्त करने और

सज्जनों को दीर्घकालावस्थायी बनाने में सहायक होते हैं, ये [1]प्राण ही मिथ्यावादियों को अधम लोक और सत्य वादियों को उत्तम लोक में स्थापित करता है। इसी प्रकार ये सूर्य रश्मियाँ रूप बाण भी अपने ताप और प्रकाश से रोग जनक कीटाणुओं को नष्ट कर हमारी रक्षा करती हैं। संसार के सभी पाप अन्धकार में होते हैं। सूर्य के प्रकाश में पापी पाप करते डरते हैं। अतः ये रश्मियाँ पापियों को बाणों के समान पीड़ा देने वाली और सज्जनों की पापियों से रक्षा करने वाली हैं।

हे दिव्य देव ! तुझ जगत् के अधिपति सर्वरक्षक परमेश्वर के जो गुण और रचे हुए नानाविध पदार्थ–प्राण एवं किरण आदि हैं जिन के द्वारा सहज ही दुर्जनों को दुःख और सज्जनों को सुख पहुँचता रहता है ऐसे उन स्वामित्व के गुणों से सम्पन्न, सज्जनों की रक्षा और दुर्जनों की पीड़ा के हेतु वाणरूप गुण और पदार्थों को हमारा बारम्बार नमस्कार है। हे प्रभुवर ! तू हमें शक्ति दे कि जो हम से द्वेष करे वा जिस से हम द्वेष करें उस दोनों ओर से होने वाले द्वेष भाव को हम आप के न्याय पर छोड़ कर स्वयं प्रतिशोध की भावना का परित्याग कर परस्पर एक दूसरे से प्रीति पूर्वक बर्तें।

---

१ प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते।
प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आदधत्॥ अथर्व ११-१-११॥

ओ३म् दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी
रक्षिता पितर इषवः ।
तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम
एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं
वो जम्भे दध्मः ॥२॥

हे प्रभो ! आप हमारे दाहिनी ओर इन्द्र अर्थात् परमैश्वर्य-युक्त सब जगत् के अधिपति–राजा स्वामी के रूप में वर्तनान हैं। कीट पतङ्ग वृश्चिक आदि की पंक्ति हमारी रक्षक है। ये [1]मेधा-बुद्धि के उपासक ज्ञान एवं अनुभव से वृद्ध जन आप के इषु हैं, बाणरूप हैं। इस कारण तुझ परमैश्वर्यवान् सब गुणों के अधिपति परमेश्वर के उन सब स्वामित्व के गुणों को हमारा वारम्वार नमस्कार है। ये कीट पतङ्ग, वृश्चिक आदि जो-जो आप के उत्पन्न किये हुए प्राणी हैं, जो सब जगत् की रक्षा करने वाले हैं, उन को हमारा नमस्कार है। हे जगदीश्वर ! इस सृष्टि में जो ये आप के उत्पन्न किये हुए पितृजन–ज्ञानी एवं अनुभवी जन हैं, जो बाण तुल्य सज्जनों की रक्षा और दुर्जनों की ताड़ना करने वाले हैं, ऐसे उन इषु-रूप-बाणरूप पितरों को हमारा नमस्कार है। हे प्रभुदेव ! जो कोई

---

१ यां मेधां देवगणा पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥ यजु० ॥

अज्ञान वश हम से द्वेष करता है और जिस किसी से हम अज्ञानवश द्वेष करते हैं, दोनों प्रकार के उस द्वेषभाव को हम आपके न्याय रूप जबड़े में धरते हैं । अर्थात् हम उस द्वेष भाव को आप की ही न्याय व्यवस्था पर छोड़ते हैं ताकि आप उसे नष्ट कर दें और हम उस द्वेषभाव से रहित होकर स्वयं किसी से वैर न करें और न ही कोई दूसरा हम से वैर करे, किन्तु हम सब लोग परस्पर प्रीति-पूर्वक प्रेमभाव से सदा वर्ता करें।

हे प्रभुवर ! जब हम स्वस्थ चित्त होकर बैठते हैं और बैठ कर जब हम मनन करते हैं, आप का ध्यान करते हैं तो हम अपने सम्मुख ही नहीं वरन् हम अपनी दायीं ओर भी आप को ही अनुभव करते हैं । हमें तब ऐसा लगता है कि आप केवल अग्निस्वरूप ही नहीं हैं, केवल ज्योतिःस्वरूप ही नहीं हैं वरन् आप तो इन्द्र भी हैं, अर्थात् संसार के सर्वविध ऐश्वर्य के स्वामी भी हैं । नहीं-नहीं आप केवल सासांरिक ऐश्वर्य के ही नहीं वरन् परमैश्वर्य के भी–मोक्षानन्द के भी स्वामी हैं । अतः जो भी आप की शरण में आता है अर्थात् आप की आज्ञाओं का पालन करता है, उसे भी आप ऐश्वर्यशाली वना देते हैं । केवल सांसारिक ऐश्वर्यों से ही आप उस की झोली नहीं भरते वरन् आन्तरिक वैभव से भी उस को आप माला-माल कर देते हैं ।

हे प्रभुवर ! इन कीट पतङ्ग, वृश्चिक आदि की जो आप की रची हुई पंक्ति है, यह हमारी रक्षक है । क्योंकि ये सब प्राणी

स्वयं विष को ग्रहण करते हैं और हमारे लिये सब वातावरण को निर्विष बनाते हैं। अतः इन के द्वारा भी आप हमारी रक्षा करते हैं। ये जो ज्ञानी एवं अनुभवी जन हैं वे वाण तुल्य हैं। क्योंकि ये श्रेष्ठों की सदा रक्षा और दुष्टों की सदा ताड़ना करते रहते हैं। हे दिव्य देव ! तुझ सब जग के अधिपति परमैश्वर्यवान् प्रभु के जो न्याय आदि गुण और रचे हुए कीट पतंग वृश्चिक आदि पदार्थ हैं जिन के द्वारा सहज ही दुर्जनों को दुःख और सज्जनों को सदा सुख पहुँचता रहता है ऐसे उन स्वामित्व के गुणों से सम्पन्न सज्जनों की रक्षा और दुर्जनों की पीड़ा के हेतु वाणरूप इन गुण और पदार्थों को हमारा बारम्बार नमस्कार है। हे प्रभुवर ! तू हमें शक्ति दे कि जो हम के द्वेष करे वा जिस से हम द्वेष करें उस दोनों ओर से होने वाले द्वेष भाव को हम आप के न्याय पर छोड़ कर स्वयं प्रतिशोध की भावना का परित्याग कर परस्पर एक दूसरे से प्रीति-पूर्वक वर्तें।

ओ३म् प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥३॥

हे प्रभो ! आप हमारे पीछे की ओर वरुण अर्थात् वरणीय–सर्वोत्तम परसेश्वर सब जगत् के अधिपति–राजा के रूप में वर्त-

मान हैं। यह बड़े-बड़े अजगर सर्प आदि विषधारी प्राणी समूह के द्वारा आप हमारे रक्षक हैं। आप के ये अन्नादि खाद्य पदार्थ वाण रूप हैं, अर्थात् श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों की ताड़ना के निमित्त हैं। इस कारण तुझ वरणीय सब के अधिपति परमेश्वर के उन सब स्वामित्व के गुणों को हमारा बारम्बार नमस्कार है। ये अजगर सर्प आदि जो आप के रचे हुए विषधारी प्राणी हैं, जो सब जगत् की रक्षा करने वाले हैं, उन को हमारा नमस्कार है। हे जगदीश्वर! इस सृष्टि में जो ये आप के उत्पन्न किये हुए अन्न आदि खाद्य एवं उदक आदि पेय पदार्थ हैं, जो वाण तुल्य सज्जनों को रक्षा और दुर्जनों की ताड़ना के निमित्त हैं, ऐसे उन इषुरूप-वाणरूप अन्न आदि खाद्य पदार्थों को हमारा नमस्कार है। हे प्रभु-देव! जो कोई अज्ञानवश हम से द्वेष करता है और जिस किसी से हम अज्ञानवश द्वेष करते हैं। दोनों प्रकार के उस द्वेष भाव को हम आप के न्याय रूप जवड़े में धरते हैं। अर्थात् हम उस द्वेष भाव को आप की न्याय व्यवस्था पर छोड़ते हैं ताकि आप उसे नष्ट कर दें और हम उस द्वेष भाव से रहित हो कर स्वयं किसी से वैर न करें और न ही कोई दूसरा हम से वैर करे, किन्तु हम सब लोग परस्पर प्रीति पूर्वक प्रेम भाव से सदा वर्ता करें।

हे प्रभुवर! जव हम शान्तचित्त होकर बैठते हैं और बैठकर जब हम आप का ध्यान करते हैं तो फिर केवल हम अपने सम्मुख–अर्थात् सामने की ओर तथा अपनी दायीं ओर ही नहीं वरन्

अपने पीछे की ओर भी आप को ही अनुभव करते हैं। हमें तब ऐसा प्रतीत होता है कि आप केवल अग्निस्वरूप, ज्योतिःस्वरूप और इन्द्र अर्थात् परमैश्वर्यवान् ही नहीं वरन् आप वरुण अर्थात् सदा पापों से पृथक् करने वाले, सबसे वरण करने योग्य, सर्वश्रेष्ठ सब के राजा के रूप में भी वर्तमान हैं। अतः जो भी आप की शरण में आ जाता है अर्थात् आप की आज्ञाओं के अनुसार आचरण करता है, उसे भी आप सब प्रकार से निष्पाप बना कर वरणीय बना देते हैं। हे प्रभुवर ! यह अजगर सर्प आदि जो आप का रचा हुआ प्राणी समूह है वह हमारा रक्षक है। क्योंकि यह प्राणी वर्ग स्वयं विष को ग्रहण कर हमारे लिये सब वातावरण को निर्विष बनाता रहता है। अतः इस के द्वारा भी आप हमारे सब वातावरण को निर्विष बनाकर हमारी रक्षा करते हैं। ये जो आप के उत्पन्न किये हुए अन्न आदि खाद्य पदार्थ हैं, ये बाण तुल्य सज्जनों की रक्षा और दुर्जनों की ताड़ना के निमित्त हैं। अर्थात् सज्जन इन पदार्थों को धर्मपूर्वक अर्जित कर,धर्मपूर्वक ही बाँट कर स्वयम् स्वास्थ्य के नियमों के अनुकूल जब इन पदार्थों का सेवन करते हैं तो तब ये बाणरूप पदार्थ उन के भीतर के रोगों और निर्बलता रूप कष्ट-क्लेश को समाप्त कर उन्हें सुख पहुँचाते हैं, उन की सब प्रकार से रक्षा करते हैं। और दुर्जन जब अधर्म-अन्याय पूर्वक इन पदार्थों को प्राप्त कर सदा स्वार्थी होकर स्वास्थ्य के सब नियमों का उल्लंघन कर जब इन पदार्थों का सेवन करते हैं तो तब ये पदार्थ उन्हें तीखे

बाणों के समान दुःख हानि एवं कष्ट पहुँचाते हैं। हे दिव्य देव ! तुझ सब जगत् के अधिपति शुद्धतम वरणीय प्रभु के जो न्याय आदि गुण और रचे हुए पदार्थ हैं, जिन के द्वारा सहज ही दुर्जनों को दुःख और सज्जनों को सुख सदा पहुँचता रहता है, ऐसे उन स्वामित्व के गुणों से सम्पन्न सज्जनों की रक्षा और दुर्जनों की पीड़ा के हेतु बाणरूप आप के इन गुणों और पदार्थों को हमारा बारम्बार नमस्कार है। हे प्रभुवर ! तू हमें सामर्थ्य प्रदान कर कि जो हम से द्वेष करे वा जिस से हम द्वेष करें उस दोनों ओर से होने वाले द्वेषभाव को हम आप के न्याय पर छोड़ कर स्वयं प्रतिशोध की भावना का परित्याग कर परस्पर एक दूसरे से प्रीतिपूर्वक वर्तें।

ओ३म् उदीची दिक्सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताशनिरिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। यो३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।

हे प्रभो ! आप हमारी बायीं ओर सोम अर्थात् सकल जगत् के उत्पादक और अपने शान्त्यादि गुणों से युक्त हुए-हुए सब को आनन्द प्रदान करने वाले सब जगत् के अधिपति-राजा–स्वामी के रूप में विद्यमान हैं। आप अजन्मा स्वयम्भू-स्वयं अपनी सत्ता से सर्वत्र विराजमान हुए-हुए हमारी सब प्रकार से रक्षा करने वाले

हैं। आप की उत्पन्न की हुई यह विद्युत इषु अर्थात् बाण रूप है। इस कारण तुझ सर्वजगत् के उत्पादक, सौम्य गुणों से सब को शान्त और तृप्त करने वाले सब गुणों के अधिपति परमेश्वर के उन सब स्वामित्व के गुणों को हमारा बारम्बार नमस्कार है। तुझ स्वयम्भू सर्वरक्षक परमेश्वर के जो न्याय आदि गुण, रचे पदार्थ हैं, जो सब की रक्षा के निमित्त हैं, उन को हमारा नमस्कार है। हे जगदीश्वर! इस सृष्टि में जो ये आप के विद्युत् आदि तेजस्वी पदार्थ हैं, जो बाण तुल्य सज्जनों की रक्षा और दुर्जनों की ताड़ना करने वाले हैं ऐसे उन इषुरूप–बाणरूप विद्युत आदि पदार्थों को हमारा नमस्कार है। हे प्रभुदेव ! जो कोई अज्ञानबश हम से द्वेष करता है और जिस किसी से हम अज्ञानवश द्वेष करते हैं, दोनों प्रकार के उस द्वेष भाव को हम आप के न्यायरूप जबड़े में धरते हैं, अर्थात् हम उस द्वेषभाव को आप की न्याय व्यवस्था पर छोड़ते हैं ताकि आप उसे नष्ट कर दें और हम उस द्वेषभाव से रहित होकर स्वयं किसी से वैर न करें और न ही कोई दूसरा हम से वैर करे, किन्तु हम सब लोग परस्पर प्रीतिपूर्वक प्रेमभाव से सदा वर्ता करें।

हे प्रभुवर ! जब हम शान्त चित्त होकर बैठते और आप का ध्यान करते हैं तो फिर केवल हम अपने सम्मुख अर्थात् सामने की ओर, अपनी दायीं ओर, तथा अपने पीछे की ओर ही नहीं वरन् अपनी बायीं ओर भी हम आपको ही अनुभव करते हैं। हमें

तब ऐसा प्रतीत होता है कि आप केवल ज्योतिःस्वरूप परमैश्वर्यं-वान् शुद्धतम वरणीय रूप ही नहीं, वरन् आप सकल जगत् के उत्पादक, शान्त्यादि गुणों के भण्डार सब के अधिपति—स्वामी राजा के रूप में भी वर्तमान हैं। अतः जो आप की शरण में आता है अर्थात् आप की आज्ञाओं के अनुसार आचरण करता है उसे भी आप सब प्रकार से सौम्य शान्त्यादि गुणों से सम्पन्न कर देते हैं! हे प्रभुवर! आप स्वयं अपनी सत्ता से सर्वत्र विराजमान हुए-हुए हमारी सब प्रकार से रक्षा करने वाले हैं। ये जो [1]विद्युत् आदि तेजस्वी पदार्थ हैं जो इषुओं अर्थात् बाणों के समान हमारे शत्रुरूप इस अन्धकार को, इन नानाविध रोगों को तथा इन चोर डाकुओं को पृथक् कर सज्जनों की रक्षा करते हैं तथा इन अन्धकार, रोग और स्तेन-तायु आदि हानिकारक शत्रुओं को समाप्त करते हैं। हे दिव्य देव! तुझ सर्व संसार के अधिपति राजा सौम्यगुणों के भण्डार प्रभु के जो न्याय आदि गुण और विद्युत आदि रचे हुये तेजस्वी पदार्थ हैं, जिन के द्वारा सहज ही दुर्जनों को दुःख और सज्जनों को सुख सदा पहुँचता रहता है ऐसे उन स्वामित्व के गुणों से सम्पन्न, सज्जनों की रक्षा और दुर्जनों की पीड़ा के हेतु बाणरूप आप के इन गुण और पदार्थों को हमारा बारम्बार नमस्कार है।

---

१ इस विद्युत् से अशनि पात आदि से मृत्यु तक भी हो सकती है और सुजीवन आदि भी सम्भव है।

हे प्रभुवर ! तू हमें शक्ति प्रदान कर कि जो हम से द्वेष करे वा जिस से हम द्वेष करें उस दोनों ओर से होने वाले द्वेष भाव को हम आप के न्याय पर छोड़ कर स्वयं प्रतिशोध की भावना का परित्याग कर परस्पर एक दूसरे से प्रीतिपूर्वक वर्तें।

ओ३म् ध्रुवा दिग् विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु।
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥५॥

हे प्रभो ! आप हमारे नीचे की ओर विष्णु अर्थात् सर्वव्यापक हुए-हुए सब जगत् के अधिपति-राजा के रूप में विराजमान हैं। ये हरे रंग वाले लता-वृक्ष आदि रूप ग्रीवा वाले आप इस ग्रीवा के समान सब के रक्षक हैं। अर्थात् जैसे ग्रीवा पदार्थों को निगलती है ऐसे ही आप इन लता-वृक्ष आदि रूप वनों के द्वारा कार्बन-डाई आक्साईड (Carbon-di-oxide) निगलते हैं और आक्सीजन (Oxygen) निकालते हैं। इस प्रकार इन लता-वृक्ष आदि के द्वारा आप हमें प्राणवायु प्रदान कर हमारी रक्षा करते हैं। में आप की उत्पन्न की हुई नानाविध औषधि-वनस्पतियाँ बाण के समान हैं। इस कारण तुझ सर्वव्यापक, सर्वद्रष्टा, सर्वान्तर्यामी, सब गुणों के अधिपति परमेश्वर के उन सब स्वामित्व के गुणों को हमारा बारम्बार नमस्कार है। तुझ कल्माषग्रीव अर्थात् हरित लता-वृक्ष

आदि के द्वारा सब की रक्षा करने वाले परमेश्वर के जो गुण और रचे पदार्थ लता-वृक्ष आदि सब जगत् की रक्षा करने वाले हैं, उन को हमारा नमस्कार है। हे जगदीश्वर ! इस सृष्टि में जो ये आप की उत्पन्न की हुई औषधि-वनस्पतियाँ हैं, वे बाणतुल्य सज्जनों की रक्षा और दुर्जनों की हानि करने वाली हैं। ऐसी इन इषुरूप-बाणरूप औषधि-वनस्पतियों को हमारा नमस्कार है। हे प्रभुदेव ! जो कोई अज्ञानवश हम से द्वेष करता है और जिस किसी से हम अज्ञानवश द्वेष करते हैं, दोनों प्रकार के उस द्वेष भाव को हम आप के न्याय रूप जबड़े में धरते हैं—अर्थात् हम उस द्वेष भाव को आप की न्यायव्यवस्था पर छोड़ते हैं ताकि आप उसे नष्ट कर दें और हम उस द्वेष भाव से रहित हो कर स्वयं किसी से वैर न करें और न ही कोई दूसरा हम से वैर करे, किन्तु हम सब लोग परस्पर प्रीतिपूर्वक प्रेमभाव से सदा वर्ता करें।

हे प्रभुवर ! जब हम शान्त भाव से बैठ कर आप का ध्यान करते हैं तो फिर केवल हम अपने सामने की ओर, अपनी दायीं ओर, अपने पीछे की ओर और अपनी बायीं ओर ही नहीं वरन् अपने नीचे की ओर भी हम आप को ही अनुभव करते हैं। हमें तब ऐसा प्रतीत होता है कि आप केवल प्रकाशस्वरूप, परमैश्वर्यवान्, शुद्धतम वरणीय, सर्वजगदुत्पादक शान्तिस्वरूप ही नहीं हैं, वरन् आप विष्णु अर्थात् सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वेश्वर के

रूप में भी विराजमान हैं। अतः जो आप की शरण में आ जाता है, सर्वत्र आप को विद्यमान जानकर आप की आज्ञाओं और प्रेरणाओं के अनुसार आचरण करता है उसे भी आप अपने गुणों से सब के हृदयों में बसने वाला बना देते हैं। अर्थात् उसे व्यापक बना देते हैं। हे प्रभुवर ! आप सर्वत्र विराजमान् हुए-हुए इन लता-वृक्ष आदि द्वारा हमें आक्सीजन-प्राणवायु प्रदान कर हमारी रक्षा करते हैं। ये औषधि-वनस्पनियाँ बाण के तुल्य हमारी आधि-व्याधियों को समाप्त करती हैं, हमारी शारीरिक न्यूनता–कमजोरी आदि को दूर कर हमारी रक्षा करती हैं। वा ये अपना सदुपयोग करने वाले सज्जनों को बाण के समान सुख पहुँचाती है–रक्षा करती हैं तथा अपना दुरुपयोग करने वाले दुर्जनों को कष्ट पहुँचाती हैं, हानि पहुँचाती हैं। ऐसी उन सज्जनों के रक्षक एवं दुर्जनों के भक्षक बाणरूप आप के गुण तथा इन औषधि-वनस्पति रूप पदार्थों को हमारा बारम्बार नमस्कार है। हे प्रभुवर ! तू हमें बल दे, कि जो हम से द्वेष करे वा जिस से हम द्वेष करें उस दोनों ओर से होने वाले द्वेष भाव को हम आप के न्याय पर छोड़ कर स्वयं प्रतिशोध की भावना का परित्याग कर परस्पर एक दूसरे से प्रीतिपूर्वक वर्तें।

ओ३म् ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्ष-मिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम

इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥अथर्व० ३.२७.१-६ ॥

हे प्रभो! आप हमारे ऊपर की ओर वृहस्पति अर्थात् वेदवाणी और विस्तृत आकाश आदि के पति के रूप में लोक-परलोक के साधक वेदज्ञान के प्रदान करने वाले, सब को विस्तृत आकाश में अवकाश अर्थात् रहने की सुख-सुविधायें प्रदान करने वाले, सब जगत् के अधिपति–राजा के रूप में विराजमान हैं। आप श्वित्र अर्थात् शुभ-ज्ञानप्रकाशमय रूप में सब की रक्षा करने वाले हैं। आप के ये वर्षा के बिन्दु इषु अर्थात् बाण के समान हैं। इस कारण तुझ वेदज्ञान के तथा विशाल आकाश आदि के पति अर्थात् वृहस्पति सब गुणों के स्वामी परमेश्वर के उन सब स्वामित्व के गुणों को हमारा बारम्बार नमस्कार है। तुझ सब प्रकार से शुभ–ज्ञानप्रकाशमय प्रभु के जो न्याय आदि गुण और रचे हुए पदार्थ हैं, जो सब जगत् की रक्षा करने वाले हैं, उन को हमारा नमस्कार है। हे जगदीश्वर! इस सृष्टि में जो ये वर्षा की वून्दें हैं, जो तेरे नियन्त्रण में रह कर बाणों के समान सब सज्जनों की रक्षा करती तथा पापियों को पीड़ा पहुँचाती है, ऐसी इन बाणरूप वर्षा की वून्दों को हमारा नमस्कार है।

हे प्रभु देव! जो कोई अज्ञानवश हम से द्वेष करता है और जिस किसी से हम अज्ञानवश द्वेष करते हैं, दोनों प्रकार के उस

द्वेष भाव को हम आप के न्यायरूप जबड़े में ही धरते हैं। अर्थात् उस द्वेषभाव को हम आप की ही न्याय व्यवस्था पर छोड़ते हैं, ताकि आप उसे नष्ट कर दें और हम उस द्वेषभाव से रहित हो कर स्वयं किसी से वैर न करें और न ही कोई दूसरा हम से वैर करे, किन्तु हम सब लोग परस्पर प्रीतिपूर्वक प्रेम भाव से सदा वर्ता करें।

हे प्रभुवर! जब हम शान्त भाव से बैठकर आप का ध्यान करते हैं तो फिर केवल हम अपने सामने की ओर, अपनी दायीं ओर, अपने पीछे की ओर अपनी बायीं ओर तथा अपने नीचे की ओर ही नहीं वरन् अपने ऊपर की ओर भी अर्थात् अपने आगे-पीछे, दांयें-बांयें, नीचे-ऊपर सर्वत्र आप को ही अनुभव करते हैं। नाथ ! कोई भी तो दिशा हम को ऐसी दिखाई नहीं देती, जहां कि हमें आप का आभास न होता हो। हमें तब ऐसा प्रतीत होता है कि आप केवल अग्निस्वरूप--ज्ञानस्वरूप, इन्द्र अर्थात् परमैश्वर्यवान्, वरुण अर्थात् शुद्धतम सर्वोत्तम, सोम अर्थात् सर्वोत्पादक शान्त्यादि गुणों से युक्त, विष्णु अर्थात् सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी ही नहीं वरन् वृहस्पति-वेदवाणी और आकाशादि के पति के रूप में विद्यमान भी हैं। अतः जो आप की शरण में आ जाता है अर्थात् सर्वत्र आप को विद्यमान जान कर आप के वेदादेशों एवं वेदोपदेशों के अनुसार आचरण करता है, उसे भी आप बृहस्पति-वेदवाणी का स्वामी बना देते हैं।

और फिर उसे जगत् में विस्तृत अवकाश अर्थात् बहुतों के हृदयों में वास करने का सौभाग्य प्रदान करते हैं।

हे प्रभुवर! तुझ ज्ञानस्वरूप, परमैश्वर्यवान्, शुद्धतम वरणीय सौम्य गुणों के अनुपम स्रोत, सर्वव्यापक सर्वान्तिर्यामी बृहस्पति-सर्वज्ञ–सर्व संसार के राजा को अपने सब ओर, यहाँ तक कि अपने भीतर-बाहर सर्वत्र अनुभव करते हुए हम सब प्रकार के पाप-तापों से, सब प्रकार के दुर्गुण-दुर्व्यसनों से, द्वेष-विद्वेष से बच कर सदा निर्द्वन्द्व निर्वैर हो कर प्रीतिपूर्वक सब से वर्तें।

हे प्रभुवर ! आप सब प्रकार से शुभ्र–ज्ञानप्रकाशमय होकर अपने शुभ्रज्ञान के प्रकाश से हमें सदा काम–क्रोध–लोभ–मोह–अहङ्कार–मद–मात्सर्य आदि के गर्त में गिरने से बचाते रहते हैं। आप की ये वर्षा की बून्दें बाणरूप में जहां धरती को हरा-भरा कर अन्नादि के अभाव को समाप्त कर सब की रक्षा करती हैं वहां अतिवृष्टि रूप में सब कृषि एवं जान माल की हानि कर सब को कष्ट भी पहुँचाती हैं। ऐसी सज्जनों की रक्षक एवं पापियों को हानि पहुँचाने वाली आप की उन वर्षा की बून्दों को हमारा बार-म्बार नमस्कार है। हे ईश्वर ! तू हमें शक्ति दे कि जो हम से द्वेष करे वा जिस से हम द्वेष करें उस दोनों ओर से होने वाले द्वेष भाव को हम आप के न्याय पर छोड़ कर स्वयं प्रतिशोध की भावना का परित्याग कर परस्पर एक दूसरे से प्रीतिपूर्वक वर्तें।

उपस्थान-मन्त्र

[उपासक को चाहिये कि वह उपर्युक्त मन्त्रों के अर्थविचार पूर्वक अपने आगे-पीछे, दायें-बायें, नीचे-ऊपर, भीतर-बाहर सर्वत्र मन से उस प्रभु को विद्यमान जान कर अपने सर्वविध पापों-अपराधों की जननी द्वेष बुद्धि को दूर कर के निम्नलिखित मन्त्रों के अर्थ विचार पूर्वक सर्वत्र व्यापक प्रभु के उपस्थान-समीप स्थान-गोद में विराजमान हुआ-हुआ अपने आप को अनुभव करे।]

ओ३म् उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ यजु० ३५-१४ ॥

हे प्रभो! [1]हम अविद्यान्धकार से अर्थात् प्राकृतिक सुख-दुःखों से ऊपर उठकर आनन्दस्वरूप, प्रलय के पश्चात् भी सदा विद्यमान रहकर मुक्त जीवों को आनन्द प्रदान करने वाले, देवों में देव अर्थात् देवाधिदेव दानियों के दानी, प्रकाशकों के प्रकाशक, ज्ञानियों के ज्ञानी, अपना सर्वस्व अर्पण कर देने वालों को आनन्द प्रदान करने वाले, चराचर के आत्मा, सर्वोत्कृष्ट, ज्योतिर्मय तुझ परमेश्वर को सर्वत्र अनुभव करते हुए बड़ी उत्कण्ठा से—बड़ी उत्कट अभिलाषा से प्राप्त होवें।

---

१ अन्वयः—वयम् तमसः परि स्वः उत्तरम् देवत्रा देवम् सूर्यम् उत्तमम् ज्योतिः पश्यन्तः उद्-अगन्म ।।

उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ यजु० ३३. ३१ ॥

हे प्रभो ![1] सब वेदों को उत्पन्न करने वाले, प्रत्येक उत्पन्न हुए पदार्थं में अभिव्याप्त रहने वाले और सब उत्पन्न हुए जड़-जङ्गम के ज्ञाता हैं। आप सब देवों के देव हैं। आप ही चराचर के आत्मा वा इस सूर्य सम सब जगत् के प्रकाशक हैं। ऐसे उस तुझ सर्वज्ञ देवाधिदेव सर्वान्तर्यामी परमपिता परमेश्वर का पूर्णतया साक्षात्कार कराने के लिये ये वेद मंत्र और संसार की रचना के नानाविध नियम [जैसे सूर्य, चन्द्र, सब शरीर आदियों की रचना और उनकी सुव्यवस्थित गतिविधियां आदि] तुझ को जतलाने वाले हैं, तेरी सत्ता का हमें बोध कराने वाले हैं, वा हमारे सम्मुख सदा उठाए-उठाए फिरने वाले हैं।

हे प्रभो! आप हमें ऐसी बुद्धि दोकि हम तेरी इस सृष्टि के नियमों को जान कर तुझ नियामक को जान सकें, और इन वेद मन्त्रों का मनन-चिन्तन कर तेरा साक्षात्कार कर सकें। ज्यों-ज्यों हम उपासक इस सृष्टि के नियमों पर विचार करते रहेंगे और इन वेद मन्त्रों का भी हृदय से हम स्वाध्याय और मनन-चिन्तन आदि करते रहेंगे, त्यों-त्यों इस संसार का पत्ता-पत्ता कण-कण और क्षण-क्षण हमें तेरा बोध कराता रहेगा।

---

१ अन्वयः--जातवेदसं देवं सूर्यं त्यं विश्वाय दृशे केतवः उत् वहन्ति ।

[1]चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च
॥यजु० ६.४२ ॥

हे प्रभो ! आप आश्चर्यजनक हैं, आप अद्भुत् हैं, सर्वदुःखों के विनाश के लिये आप ही एकमात्र परमबल हैं, आप ही एकमात्र आश्रय हैं। आप मित्र अर्थात् राग-द्वेष से सर्वथा रहित हुए-हुए मित्र भावना वाले, वरुण अर्थात् सब उत्तम कर्मों को करने वाले श्रेष्ठ, अग्नि अर्थात् उत्तम ज्ञानज्योतिः से प्रकाशमान उपासक के चक्षु हैं, अर्थात् मार्गदर्शक हैं, उस को सत्य-असत्य का ज्ञान कराने वाले हैं। आप ही अपनी व्यापकता से द्युलोक और पृथिवी लोक को तथा इन दोनों के मध्य में वर्तमान अन्तरिक्ष लोक को पूर्ण कर रहे हैं। अर्थात् तीनों लोकों में सर्वत्र आप ही अभिव्याप्त हो रहे हैं। परन्तु सर्वत्र अभिव्याप्त होने पर भी हे

---

१ (i) नावेदविन्मनुते तं वृहन्तम् ॥ तै० ब्र० ३.१२.६.७ ॥
जो वेद को नहीं जानता वह उस परमेश्वर को नहीं जान सकता। क्योंकि वेदों में उस के जानने के उपाय बताए गए हैं।
(ii) सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति, तत्ते पदं सग्रंहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥ ॥कठोपनिषद्॥

प्रभुवर ! आप देवों अर्थात् ज्ञानी ध्यानी साधकों के हृदय में ही उदय होते हैं, प्रकाशित होते हैं। आप इस सब चेतन-अचेतन, चर-अचर, जंगम-स्थावर जगत् के आत्मा हैं, अर्थात् अन्तर्यामी रूप से इस सब जगत् के उत्पादक प्रकाशक एवं प्रेरक हैं। आप सूर्य सम स्वयं ज्योतिर्मय हुए-हुए मुझे भी अपनी तेजोमयी ज्योति से ज्योतिर्मय कर रहे हैं, ऐसा मैं अपने भीतर अनुभव करता हुआ कह रहा हूँ।

हे प्रभो ! आप आश्चर्यरूप परम बलयुक्त हैं । मित्र, वरुण और अग्निरूप सच्चे-सुच्चे साधक के आप पथप्रदर्शक हैं । आप द्यौ-पृथिवी और अन्तरिक्ष में सर्वत्र वर्तमान रहते हुए भी देवों-दिव्य साधकों के हृदयों में अभिव्यक्त होते हैं। आप इस सब चेतन।चेतन जगत् के आत्मा हैं। अर्थात् अन्तर्यामी रूप से प्रेरक हैं। आप सूर्य सम स्वयं प्रकाशमान हुए-हुए मुझे भी अपने प्रकाश से प्रकाशमान कर रहे हैं, ऐसा मैं भीतर से अनुभव करता हुआ कह रहा हूँ।

तचचक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतँ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥

॥ यजु० ३६.२४ ॥



1हे प्रभो ! जो आप सब के द्रष्टा वा सब के पथप्रदर्शक और देवों अर्थात् दिव्य गुणों से सम्पन्न विद्वानों के परम हित-कारक हैं, ऐसे शुद्धस्वरूप तेजोमय प्रकाशमय आप दिव्यदेव हम उपासकों के सम्मुख उदय हुए हैं। अब हम सचमुच तुझ पावन परमेश्वर को अपने भीतर–अपने सम्मुख विराजमान हुआ-हुआ अनुभव कर रहे हैं। ऐसे उस तुझ सूर्यसम दैदीप्यमान और उपा-सकों के हृदयों को प्रकाशमान करने वाले परब्रह्म परमेश्वर को हम सौ वर्ष पर्यन्त देखें, और तेरी अपार कृपा से हम सौ वर्ष पर्यन्त जीवें, हम सौ वर्ष पर्यन्त सुनें, हम सौ वर्ष पर्यन्त बोलें, हम सौ वर्ष पर्यन्त अदीन अर्थात् स्वतन्त्र होकर रहें। तेरी ही कृपा से हम सौ वर्ष से अधिक भी देखें, जीवें, सुनें, सुनावें और सदा स्वाधीन होकर ही रहें।

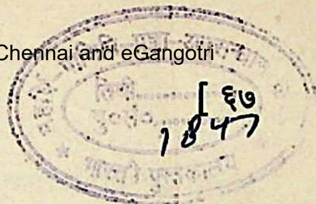
हे प्रभो ! वैसे आप सब के द्रष्टा और सब के पथ प्रदर्शक हैं, परन्तु जो अपने को दिव्य गुण कर्म स्वभावों से अलंकृत करते रहते हैं ऐसे उन दिव्य गुणों से देदीप्यमान देवों के अर्थात्, सच्चे-सुच्चे साधकों के आप परम हितैषी हैं। अतः हे शुद्धतम प्रकाशमय परमदेव ! आप ऐसे उन हम उपासकों के सम्मुख उदय हुए

---

१ चित्रम्, अनीकम्, मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः चक्षुः । द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षम् आप्राः। देवानाम् उदगात्। जगतः च तस्थुषः आत्मा, सूर्यः, स्वाहा ॥

हैं। अब हम सचमुच आप का साक्षात् अनुभव पा रहे हैं।

हे प्रभुवर! आप की ऐसी कृपा बनी रहे कि जिस से उस आप परब्रह्म को हम इसी प्रकार सौ वर्षों तक देखते रहें—अनुभव करते रहें। ऐसे ही आप का साक्षात् अनुभव करते हुए हम सौ वर्षों तक जीते रहें, ऐसे ही सौ वर्षों तक हम श्रद्धा भक्ति से आप को सुनते रहें, ऐसे ही सौ वर्षों तक हम श्रद्धा भक्ति से आप का बखान-व्याख्यान करते रहें। इस प्रकार हम सौ वर्षों तक आप का ही साक्षात् अनुभव करते हुए—आप का ही दर्शन श्रवण और वर्णन करते हुए अदीन—बिना किसी के आधीन हुए अर्थात् सदा स्वाधीन होकर ही जीवन व्यतीत करते रहें। हे प्रभुवर! आप की आज्ञा का श्रद्धा भक्ति से पालन करते हुए आप की अपार अनुकम्पा से यदि सौ वर्षों से अधिक भी हम जीयें तो भी हमारा नीरोग शरीर, दृढ़ इन्द्रियाँ, शुद्ध मन और आनन्द सहित आत्मा सदा बना रहे। और हम उसी प्रकार से आप के प्रेम में अत्यन्त मग्न होकर अपने आत्मा और मन को सदा आप में जोड़ कर सदा आप को ही देखते हुए, सुनते हुए और गाते हुए ही जीवन व्यतीत करते रहें। [इस प्रकार साधक उपस्थान के उपर्युक्त मन्त्रों के द्वारा श्रद्धा भक्ति पूर्वक उस परब्रह्म परमेश्वर के अत्यन्त निकट बैठ कर उस से स्नेह और आनन्द को पाकर अब निम्नलिखित मन्त्र के द्वारा उस प्रभु से संसार में उत्तमविध कार्य करने के लिये जो सर्वोत्तम वस्तु सद्बुद्धि है, उस की प्रार्थना करे।]



गुरु मन्त्र

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

यजु० ३६.३ ॥ ऋ० ३.६२.१० ॥

हे परमेश्वर ! आप सर्वरक्षक हैं। आप सत् चित् और आनन्दस्वरूप हैं। आप प्राणों के भी प्राण, दुःखविनाशक और सुखस्वरूप तथा सब को सुख प्रदान करने वाले हैं। आप सविता अर्थात् सर्वोत्पादक, सर्वैश्वर्यों के दाता, सर्वप्रेरक, देव अर्थात् दिव्य गुणों से युक्त, सब सुखों के दाता और सब की आत्माओं में प्रकाश करने वाले हैं। ऐसे तुझ सविता देव का जो वरेण्य–अत्यन्त वरण करने योग्य और जो भर्गः–अत्यन्त शुद्ध तेजोमय रूप है उस का हम ध्यान करते हैं वा उस को हम लोग सदा प्रेम-भक्ति से अपनी आत्मा में धारण करते हैं। जो उपर्युक्त स्वरूप वाला तू प्रभु है, वह तू हमारी बुद्धियों को अशुभ कर्मों से सदा पृथक् करते हुए शुभ कर्मों में सदा प्रेरित करता रह।

समर्पण

[इस प्रकार सब मन्त्रों से परमेश्वर की सम्यक् उपासना करके निम्नलिखित वाक्य के द्वारा उपासक अपने अहंकार की

निवृत्ति के लिये किये गए सन्ध्योपासना-रूप कर्म को प्रभु के प्रति समर्पित करते हुए कहता है······]

हे ईश्वर दयानिधे ! भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादिकर्मणाः धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्य सिद्धिर्भवेन्नः ॥

हे ईश्वर दयानिधे ! आप की कृपा से जप-उपासना आदि जो-जो उत्तम कार्य हम लोग करते हैं वे सब आप के प्रति समर्पित हैं, जिस से कि हम लोग आप को प्राप्त होके, धर्म-जो सत्य-न्याय का आचरण करना है, अर्थ—जो धर्म से पदार्थों को अर्जित अर्थात् उपलब्ध करना है, काम–जो धर्म और अर्थ से इष्ट कामनाओं का उपभोग अर्थात् सेवन करना है, और मोक्ष–जो सब दुःखों से छूट कर सदा आनन्द में रहता है, ऐसे इन चारों पदार्थों की सिद्धि आप की कृपा से हम को शीघ्र प्राप्त हो ।

[1]नमस्कार-मन्त्र

ओ३म् नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च । मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥

यजु० १६.४१ ॥

---

१ उपासना के अन्त में उपासक निम्नलिखित मन्त्र से अपने उपास्यदेव को नमस्कार करे ।

हे परमात्म देव ! शान्ति के [1]प्राप्त कराने वाले तुझ परमेश्वर के लिये हमारा नमस्कार हो। सुख के प्राप्त कराने वाले तुझ परमेश्वर के लिये हमारा नमस्कार हो। [2]शान्त अर्थात् सबको शान्त करना ही जिस का स्वभाव है, ऐसे तुझ प्रभु के लिये हमारा नमस्कार हो। सुख अर्थात् सब को सुखी करना ही जिस का स्वभाव है, ऐसे तुझ प्रभु के लिये हमारा नमस्कार हो। [3]कल्याण करने वाले तुझ सब से प्यारे प्रभु के लिये हमारा नमस्कार हो। और अत्यन्त कल्याण करने वाले-अर्थात् पूर्ण कल्याण करने वाले तुझ सब से न्यारे तथा प्राणों से भी प्यारे प्रभु को हमारा नमस्कार हो।

---

१ भू प्राप्तौ–आत्मनेपदी (चु०)

२ शं वा मयः उपपद रहने पर "डुकृञ् करणे" धातु से ताच्छील्य अर्थ में (अ० ३.२.२०) से "ट" प्रत्ययः हुआ।

३ शिवु कल्याणे।

'श्रद्धा साहित्य प्रकाशन' में श्रद्धा पूर्वक दान देने वाले महानुभावों की सूची

सर्व श्री –

आर्य समाज उसण्ड जि० सहारनपुर	१०-००
धर्मेन्द्र धींगरा ओंकार कुंज बड़ोदा	१०-००
श्रीमती कमला देवी जम्मु तवी	१०-००
स्त्री आर्य समाज कोटली	२१-००
श्रीमती राम प्यारी जम्मु तवी	२१-००
बहिन प्रमिला, प्रकाशवती, सान्ताक्रुज बम्बई (मासिक)	५०-००
परमात्मा शरण जी मसूरी	१०-००
डी० पी० शुक्ला (सरोज बहिन जी) मसूरी	१०-००
रामलाल नांगिया आर्य मसूरी	५१-००
ओम प्रकाश जी मसूरी, प्र०आ०स० लाल बाग लखनऊ	२१-००
सुशील कुमार जी आर्य समाज मसूरी	२१-००
कश्मीरी लाल ट्रस्ट से, द्वारा चौ० प्रताप सिंह जी मासिक २१ के हिसाब से (तीन मास जुलाई से अगस्त तक)	६३-००
प्रेमसिंह वर्मा चक्खूवाला देहरादून	१०-००
डा० एम० एम० राजावत, देहरादून	१०-००
हंसराज सूत गोला फैक्ट्री रघुमाजरा पटियाला	१०१-००
कश्मीरीलाल ट्रस्ट (द्वारा चौ० प्रताप सिंह) मासिक	२१-००
अशोक बग्गा मेरठ	५००-००
प्रह्लाद कुमार आर्य हिण्डान गुड़मल ट्रस्ट	५०-००
डा० मोहन Eye Hospital बड़ोत	१००-००
नवनीत सत्यप्रिय ट्रस्ट देहली	४०-००
स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वपी मासिक	११-००
बहिन सावित्री रस्तोगी, मेरठ	१०-००

"श्रद्धा साहित्य प्रकाशन" द्वारा श्रद्धापर्व[illegible]

महानुभावों के सहयोग से लेखक क[illegible]

क्रम सं०	नाम पुस्तक	प्र० स[illegible]	
१	प्रार्थना सुमन, भाग–१	१[illegible]	
२	कौन चैन की नींद नहीं सो सकते और उसके उपाय	२[illegible]	
३	वेद सुधा, भाग–१	२[illegible]	
४	विदुर जी की दृष्टि में बुद्धिमान् कौन ?, भाग–१	२[illegible]	
५	महान् विदुर के महान् उपदेश	२[illegible]	
६	प्रार्थना प्रदीप, भाग–१		
७	प्रार्थना प्रसून, भाग–१		
८	प्रार्थना सुमन, भाग–२	२०००	४०००
९	वेद सुधा, भाग–२	२०००	४०००
१०	विनय सुमन, भाग–१	२०००	४०००
११	विनय सुमन, भाग–२	२०००	४०००
१२	अनन्त की ओर	२०००	४०००
१३	वैदिक पुष्पाञ्जलि, भाग–१	२०००	
१४	वैदिक पुष्पाञ्जलि, भाग–२	२०००	
१५	वैदिक गृहस्थाश्रम(सुखी गृहस्थ)	३०००	४०००
१६	प्रभात वन्दन	३०००	
१७	वेदोपदेश, भाग–१	४०००	
१८	वैदिक रश्मियां, भाग–१	४०००	
१९	शयन विनय	४०००	
२०	विनय सुमन, भाग–३	३०००	
२१	विदुर जी की दृष्टि में बुद्धिमान कौन भाग–२	४०००	
२२	वैदिक आदर्श परिवार	४०००	
२३	(ब्रह्म यज्ञ) वैदिक संध्या	४०००	

मुद्रक—शक्ति प्रेस, (नहर पुल) कनखल । फोन : ७७